महाकाव्य

●

श्यामनारायण पाण्डे

* श्री *

जौहर

वीर - करुण - रस - सिक्त

अ
द्वि
ती
य

महाकाव्य

छन्द-संख्या
१३२७

कवि

श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

प्रकाशक

मनोहर प्रकाशन

के. १४/४ जतनबर

वाराणसी—१

प्रकाशक—
मनोहर प्रकाशन
के १४।४ जतनबर
वाराणसी—१

षष्ठ संस्करण १९७५ ई०
मूल्य : पंद्रह रुपये

मुद्रक—
फाइन प्रिंटिंग वर्क्स
जतनबर, वाराणसी।
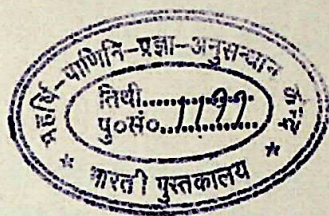
श्रीमान
राजा अजीतप्रताप सिंह
जी
को
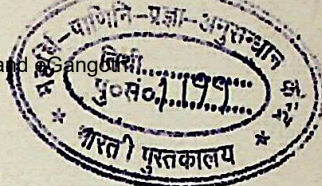
शुभे

यह लिखते हृदय काँप रहा है कि जौहर की चिता के साथ ही तुम्हारी भी चिता धधक उठी। 'जौहर' के निर्माण के समय हम दोनों में से किसी ने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इसका अन्त तुम्हारा अन्त है। लेखनी के पीछे कोई काली छाया चल रही है, छन्दों की चाल में कोई चाल है। 'जौहर' के उद्भव में तुम्हारा मिलन, निर्माण-काल तक तुम्हारा सहयोग और अन्तिम छन्द लिखते-लिखते तुम्हारा महानिर्वाण, एक साथ ही मेरे हृदय में अग्निवाण की तरह चुभ गये हैं।

काश, पहले यह मालूम होता कि चित्तौड़ की उन सतियों के साथ तुम्हारा कोई अभेद्य सम्बन्ध है, तुम्हारे बिना न उनका व्रत पूरा होगा और न 'जौहर' की चिनगारियों की भूख ही मिटेगी तो मुझे दुख न होता। दुख तो इसलिए है कि अन्धकार के एकान्त में मुझे छला गया। पीयूष-प्रवाहिणी के तट से मेरे तृषाकुल मन को किसी ने खींचकर मरु में ढकेल दिया।

सरले, 'जौहर' के अनेक छन्दों में तुम्हारी अनुभूतियाँ, स्वीकृतियाँ और स्त्री-सुलभ कोमल भावनाएँ अंकित हैं, उन्हें तुम प्रकाश-रूप में अब नहीं देख सकतीं, उन्हें तुम अपने स्वरों में अब नहीं बाँध सकतीं, उन्हें तुम अपने स्वतन्त्र गीतों में मिलाकर अब नहीं गा सकतीं, यही सोचकर व्यथा से प्राण तड़प उठते हैं और पिछले जीवन के सुख आँखों से बहने लगते हैं। 'जौहर' के छन्द तुम्हें कभी भूल न सकें इसीलिए तो मैं तुम्हें सामने रखने का लोभ संवरण न कर सका।

वल्लभे, मानव की परवशता का यही अन्तिम दुर्ग है, मन के साथ बुद्धि के चरम विकास का यही ह्रास है और यही दुर्बलता। उस पार तुम और इस पार मैं। अनेक प्रयत्न करने पर भी दोनों का एक बिन्दु पर मिलना कठिन ही नहीं, असम्भव है। फिर भी मैं सोचता हूँ कि सब कुछ खोकर भी पहले की तरह तुम्हें एक बार फिर पा जाता।

देवि, विवश मानव की अल्प-बुद्धि और परमित शक्ति से कहीं दूर चली गई हो, न जाने कहाँ? जाओ, जहाँ रहो सुख से रहो, प्रसन्न रहो।

तुम्हारा ही

'पतिदेव'

सूची

अग्निकण

मातृ-मन्दिर, मेष-संक्रान्ति
सारंग, काशी २००१

"फूँक दो उस राष्ट्र को जहाँ स्वाभिमान पर मर मिटनेवाले पुरुष नहीं, आग लगा दो उस देश में जहाँ पातिव्रत की रक्षा के लिए धधकती आग में अपने को झोंक देनेवाली स्त्रियाँ नहीं और पीस दो उस समाज को जो अपना अधिकार दूसरों को सौंप कर बँधे हुए कुत्ते की तरह याचक आँखों से उसकी ओर देखता है। मैं यह इसलिए कहती हूँ कि मानव हूँ, मानव जाति की विशेषताओं को जानती हूँ, मैं उसके अधिकारों से परिचित हूँ और मुझे उसके कर्त्तव्यों का ज्ञान है। मानव कुत्ता-बिल्ली नहीं है कि डण्डों की चोट खाकर भूल जाय, चूँ तक न करे, हलवाहे का बैल नहीं है कि बार-बार गालियाँ सुन कर चुप हो जाय, कानों पर जूँ तक न रेंगे और काबुक का कबूतर नहीं है कि साग बनाकर कोई निगल जाय और डकार तक न ले। मानव तूफ़ान है, जिसके उठने पर समग्र सृष्टि हिल उठती है। मानव भूडोल है, जिसके डोलने से ससागरा पृथ्वी काँप उठती है और मानव वज्र है जिसकी कठोर ध्वनि से आकाश का कोण-कोण दहल उठता है। मानव समुद्र पी गया, मानव ने सूर्य के रथ को रोक लिया और ब्रह्माण्ड को परिमित कर अपने मस्तिष्क में भर लिया। फिर भी वीरसू चित्तौड़ चुप है, चुप हैं शत्रु-दल के वक्षस्थल चीरकर रक्त चूसनेवाली पुस्तैनी हिंसा-वृत्ति और चुप है वैरियों के शिर पर तलवारों के साथ घूमनेवाली

मृत्यु''—रानी ने दरबारियों पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली; सारा दरबार स्तब्ध, नीरव और निश्चल।

वीर सती ने लम्बी साँस ली, भावनाओं के संघर्ष से वाणी गरज उठी—''तृणं शूरस्य जीवितम्' शूर जीवन को तृण समझता है। हथियारों के संघर्ष में, तलवारों की चकाचौंध में और लड़ते हुए वीरों के अव्यक्त कोलाहल में स्वाभिमान की रक्षा धीर करते हैं, अधीर नहीं; मृत्यु के खुले हुए मुख के सामने क्रुद्ध विषधरों के फणों को रौंदते हुए सपूत चलते हैं, कपूत नहीं; अपने पैरों की धमक से पृथ्वी को कँपाते हुए भाले-बरछों की तीव्र नोकों से सीने अड़ाकर रण-यात्रा पुरुष करते हैं, कापुरुष नहीं। राजपूतों का स्वाभिमान वैरियों के कटे हुए सीनों के ऊपर खेलता है और उनकी वीर वाणी तोपों की गड़गड़ाहट में गरजती है।

आखेट खेलते हुए रावल का शत्रु की हथकड़ियों में बँधकर कारागृह में बन्द रहना आश्चर्य नहीं है; आश्चर्य है उनकी मुक्ति, जो तुम्हारी तलवारों के साथ म्यानों में सो रही है और चुप है उनकी हुंकृति शोणित की गंगा बहा देने वाले तुम्हारे हथियारों की अतृप्ति में।

माँ- बहनों की यह अवज्ञा और तुम्हारी यह मौन-साधना ? रावल के पैरों में बेड़ियों की झंकार और तुम्हारे नश्वर जीवन पर ममता का यह अत्याचार ? अपमानित गढ़ के पाषाणों में भी एक हलचल और बापा रावल के दल के सामने दलदल ? वैरियों का ताल ठोंककर ललकारना और मेवाड़-केसरियों का माँद में घुसकर झख मारना ? धिक्कार है तुम्हारे बल को, धिक्कार है तुम्हारी रवानी को ! बापा रावल के जवानों, धिक्कार है तुम्हारी जवानी को !

क्षत्राणियों के सीनों का दूध कलंकित करके राजपूतों का जीना मृत्यु से भी भयंकर और घृणित है, मेवाड़ के वातावरण में साँस लेनेवालों के लिए प्रतिपक्षी की

क्रुद्ध आँखें देखने के पहले ही हलाहल पी लेना अच्छा है, आँधी और तूफ़ान से लड़नेवाले मेवाड़ी सिंह बिजली-सी कौंधनेवाली तलवारों में घुसकर यदि शत्रुओं के शिर काटकर पहाड़ न लगा दें तो उनके लिए एक चुल्लू पानी ही काफी है ! बस और कुछ ?"

रानी का रोम-रोम जल रहा था, आँखों से चिनगा-रियाँ निकल रही थीं और मुख के द्वार से दावानल के समान ज्वाला।

जिस समय महारानी रावल की मुक्ति में देर होने के कारण राजपूतों पर मुख से शब्दों के अङ्गार फेंक रही थीं ठीक उसी समय राजघराने के दो बालकों की त्योरियाँ चढ़ रही थीं, सीने तन रहे थे, भुजाएँ फड़क रही थीं और बार-बार उनके दाँये हाथ तलवारों की मूठों पर चले जा रहे थे।

रानी की ललकार जारी थी—"बोलो राणा के वंश-धरो, बोलो रावल के वंशधरो, रावल की मुक्ति के लिए यदि युद्ध से इन्कार करते हो तो बोलो, आँधी से अपनी तूफानी गति मिला दूँ ? महिषमर्दिनी महाकाली-सी गरजूँ ? और क्षण भर में ही वैरियों के कलेजे चीरकर रक्त चूस लूँ ? बोलो, शेषनाग की तरह बरवट लूँ ? और पलक, भाँजते सारी पृथ्वी को चूर-चूरकर धूल में मिला दूँ। बोलो, महाप्रलयकालीन ज्वाला की तरह भभकूँ और बात की बात में सारी सृष्टि जलाकर भस्म कर दूँ ? उत्साह न हो तो बोलो, किसी सम्राट् में क्या, चराचर-सर्जन-कर्त्ता ब्रह्मा, देवाधिदेव विष्णु और गणों के सहित भूताधिपति रुद्र में भी चित्तौड़ की प्रबल गोद से मुझे छीन लेने की शक्ति नहीं है। लोहे की तीखी और तप्त सलाखों के बीच से होकर जलती हुई आग को कपड़े में बाँधकर ले जाना सरल नहीं है, त्रिपथगा के प्रवाह को रोककर उल्टी धारा बहा देना खिलवाड़ नहीं है। आकाश से ध्वनि, पृथ्वी से गन्ध और अग्नि से ज्वाला को दूर करना कठिन है, असम्भव है।"

'महारानी की जय' के निनाद से सारा दरबार काँप उठा। गोरा-बादल की उद्दीप्त तलवारें चमक उठीं और तत्क्षण गोरा की विनीत वाणी में साहस उमड़ने लगा—धन्य है देवि ! तू धन्य है ! तू हीं, श्री और कीर्ति की तरह पवित्र और शक्ति की तरह बलवती है। निश्चय, तू अपने पातिव्रत के तेज से शत्रुओं को भस्म कर सकती है, सिंह-वाहिनी की तरह शत्रु-असुर को पैरों के नीचे दबाकर चूर कर सकती है और अपनी वरद भुजाओं के बल से रावल रतन को मुक्त कर सकती है, इसमें संदेह नहीं, किन्तु गोरा की तलवार की कब परीक्षा होगी ? माँ ! गोरा का अदम्य उत्साह और दुर्दमनीय साहस किस दिन काम आयेगा ? माँ ! तेरे गोरा के गर्जन और बादल के तर्जन से बैरी-दल पर बिजली कब गिरेगी ? माँ ! गोरा-बादल तेरे सामने बाल, किन्तु शत्रुओं के लिए काल हैं। माँ ! तू आज्ञा दे गोरा-बादल की दो ही तलवारें बैरियों को यमपुर पहुँचाने के लिए काफी हैं। देवि, तू इशारा कर हम दुश्मनों के ऊपर मौत की तरह दौड़ें, मेवाड़ के अपमान का बदला खून की नदी बहाकर लें, हम विद्युद्गति से निकलें और खिलजी के पड़ावों में आग लगा दें। देवि, आज्ञा दे, तुझे हमारी शपथ है; देवि इशारा कर तुझे मेवाड़ की शपथ है; देवि क्षमा कर तुझे रावल की शपथ है।'—बादल ने गोरा के कहे हुए शब्दों की हुँकारी भरी और दोनों वीर बालक हाथ जोड़कर रानी के सामने खड़े हो गये। अपलक, अचल और दुर्निवार्य।

अगणित तलवारों के भयङ्कर प्रकाश से दरबार प्रकाशित हो गया, वीर सलामी के बाद सहस्रों मुखों से एक साथ निकल पड़ा—"हम राजलक्ष्मी के पातिव्रत की रक्षा के लिए मर मिटेंगे, हम अपने गौरव के लिए समर-यज्ञ में स्वाहा हो जायेंगे और रावल के लिए प्राण दे देंगे। चित्तौड़ का वक्षस्थल अभिमान से तन गया और वीरों की दर्पपूर्ण शब्दावली से आकाश का स्तर-स्तर गूँज उठा।

रानी भभर उठी, बार-बार रोमाञ्च होने लगा, तमतमाये मुख पर प्रसन्नता प्रस्फुटित हो गयी और अन्तर की मौन कल्पनाएँ मुखरित हो उठीं—

"वीरो, तुम्हारी प्रतिज्ञा मेवाड़-भूमि के अनुरूप ही है, किन्तु "शठे शाठ्यं समाचरेत्" वाली कहावत कहीं व्यर्थ न पड़ जाय इसलिए तुम वैरी को सूचित कर दो कि 'आपके आज्ञानुसार हमारी महारानो अपने पति को मुक्त करने के लिए सात सौ सहेलियों के साथ कल प्रातःकाल पड़ाव पर पहुँच जायेंगी' और इधर मखमली उहारों के साथ रात भर में सात सौ डोले तैयार कर दिए जायँ। एक एक डोले के भीतर सशस्त्र एक एक राजपूत और प्रत्येक डोले के चारों कहारों के वेष में मेवाड़ के सपूत, जो वैरियों के लिए यमदूत से भी भयङ्कर हों।"

'महारानी की जय' के निनाद से एक बार फिर दरबार काँप उठा।

प्रभात का समय था, कोयल के मीठे स्वर से प्रकृति मधुर हो रही थी। अनेक रूप-रंग के परिंदे दिनराज के स्वागत में प्रभाती गा रहे थे। मलयानिल से आलिंगित कलियों की मुसकान पर भौंरे नाच रहे थे, सुगन्धित पवन के गले मिल-मिल झूमती हुई आम्रशाखाओं से बौर झर रहे थे और पतझड़ के पीले पत्तों के बिछौनों पर महुए के फल टपटप गिर रहे थे, जैसे किसी के आसूँ। इसी समय 'महारानी की जय' की तुमुल ध्वनि के बीच वीर दुर्ग का विशाल लौह फाटक खुला, वीर कहारों ने डोलियाँ उठायीं। क्षण भर बाद लोगों ने देखा कि चित्तौड़ के चक्करदार और ढालू पथ से कतार बाँधकर सात सौ डोले गोरा-बादल के नायकत्व में बड़ी लगन के साथ उतर रहे हैं। देखते ही देखते लाल-लाल मखमली उहारों के डोले शाही डेरों के पास पहुँच गये। अलाउद्दीन प्रसन्नता से उछल पड़ा और काज़ी को बुलाने के लिए आतुर हो उठा। उसे क्या पता

था कि डोलों के भीतर उसके और उसके साथियों के काल बैठे हैं। पड़ाव के सामने बड़ी सावधानी से एक ओर डोले रखकर घाती कहार खड़े हो गये। एक बार तिरछी आँखों से तलवारों की ओर देखा, किन्तु तत्क्षण सजग।

गोरा ने खिलजी के निकट जाकर कहा—"लोक-सुन्दरी हमारी महारानी, जो इस समय आपके हाथों में है, निकाह होने के पूर्व अपने पति रावल रतनसिंह से एक घड़ी तक मिल लेना चाहती हैं, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप उसके अन्तिम मिलन की उत्सुकता का आदर करेंगे।" डोलों के आने से अलाउद्दीन इतना मस्त हो गया था कि उसे अपने तन-मन की भी सुध न थी। दाढ़ी के अधपके बालों पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया—"प्यारे राजकुमार, तुम्हारी बात और प्यारी की इच्छा दोनों मंजूर है। रावल छोड़ दिया जाएगा।" खिलजी के शब्द गोरा के हृदय में तीर की तरह धँस गये। क्रोध से आँखें लाल हो गयीं, भौंहें तन गयीं और अनायास उसका दायाँ हाथ बगल में छूरे पर चला गया। किन्तु बुद्धिमान गोरा सँभल गया। रावल रतनसिंह मुक्त कर दिये गये और मुक्ति के दूसरे ही क्षण चित्तौड़ के सुरक्षित दुर्ग पर रानी से कारा की कहानी कह रहे थे जहाँ पहुँचना शत्रु क्या, काल के लिए भी कठिन था। घड़ी दो घड़ी बाद भी जब रानी से रावल के मिलने का समय नहीं बीता, तब खिलजी बौखला उठा। क्रोध से रोम-रोम जलने लगा और उसके खूनी हाथों में नंगी तलवार चमक उठी—मौत की तरह। हड़बड़ाकर उठा और जाकर रानी के कृत्रिम डोले का परदा उठा दिया। उसमें उसे पद्मिनी नहीं मिली, न रावल ही; बल्कि एक सशस्त्र राजपूत उसकी ओर काल की तरह लपका। पैर के नीचे भयङ्कर साँप के पड़ जाने से जैसे कोई पथिक चिल्ला उठता है ठीक उसी तरह चिल्लाकर वह भागा। उसका चिल्लाना था कि उसके सिपाहियों की सहस्रों तलवारें डोलों की ओर

लपकीं, कहारों ने भी हथियार उठाये, घोर कोलाहल के बीच घमासान आरम्भ हो गया।

जहाँ एक क्षण पहले मंगलगान की आशा थी, वहाँ मृत्यु का नग्न ताण्डव होने लगा। एक दूसरे को काटते हुए वीरों के गर्जन से आसमान फटने लगा। लाशों पर लाशें बिछ गयीं। रुधिर की टेढ़ी-मेढ़ी नदियाँ मुरदों को बहाती हुई बढ़ चलीं। खिलजी-सेना को व्याकुल देख राजपूतों की हिंसा-वृत्ति जागरित हो उठी, वे बड़े उत्साह से शत्रुओं को काट-काटकर गरजने लगे। राजपूत तो लड़ ही रहे थे, गोरा बादल के साहस और रण-कौशल को देखकर बड़े-बड़े रण-विशारद चकित थे। रुक-रुककर दोनों ओर के सैनिक बालकों के युद्ध देख रहे थे, आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़कर। वे जिधर रुख करते थे उधर भेड़ों और बकरियों की तरह शत्रु भागते थे। दोनों बालक वैरियों को दो काल की तरह मालूम पड़ते थे—निःशंक, निर्भीक और दुर्द्धर्ष।

शत्रुओं के पैर उखड़ गये, किन्तु यह क्या! भगदड़ में ही गोरा घिर गया, सैकड़ों तलवारें उसके शरीर पर चमक उठीं और बात की बात में उसकी बोटी-बोटी काटकर अलग कर दी गयी। उछलती और नाचती हुई उसकी शत-शत बोटियों से शब्द निकल पड़े—"वीरो, अपने देश के गौरव पर, अपनी जाति के सम्मान पर, कुल-वधुओं के पातिव्रत पर और स्वाभिमान पर मर मिटो! वीरो, धर्म के ऊपर बलि हो जाना राजपूतों का जन्मसिद्ध अधिकार है। वीरो, वीर सती के चरणों में गोरा का प्रणाम……।"

शत्रु तो भाग ही रहे थे, दिल्ली पहुँच गये; किन्तु चित्तौड़ की सूर्याङ्कित पताका के नीचे वीरवर गोरा का बलिदान हो गया। कोई बतला सकता है क्यों और किसलिए ?

रात्रि के नीरव प्रहर में दुर्ग की छाती पर एक चिता जल रही थी, जल रही थी उसकी चढ़ती हुई जवानी और उमड़ता हुआ सौन्दर्य।

लोग अश्रुपूर्ण और भयातुर नेत्रों से चिता की ओर देख रहे थे अचल, स्तब्ध और निर्वाक्। देखते ही देखते मानव-शरीर के स्थान पर थोड़ी-सी राख रह गयी। चित्तौड़ के निवासियों ने मौन-मौन उसे उठाया और शिर से लगा लिया। दुर्ग के उस कठोर और पथरीले सीने पर अब भी राख के कुछ कण होंगे? यदि होते तो···!

चित्तौड़ के कहारों से दिल्ली के सम्राट् अलाउद्दीन खिलजी का पराजित होकर लौट जाना कम अपमान की बात न थी, अब तो उसके लिए यही उचित था कि वह पद्मिनी के नाम से ही भागता, किन्तु उस रूपलालची दानव की इच्छा बलवती ही होती गयी। वह इतना कठोर और नृशंस था कि उसका नाम लेकर माताएँ अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराती थीं। उसके फाटकों पर खून चूते हुए कटे शिर टँगे रहते थे, तड़प-तड़प कर किसी को मरते देखकर उसे बड़ा आनन्द मिलता था। वह किसी भी जंगली हिंस्र जन्तु से अधिक खूँखार था। उसके वस्त्रों में खून के दाग लगे रहते।

यह सब होते हुए भी उसमें एक बान थी, अच्छी या बुरी! वह जिस काम को हाथ में लेता था, बार-बार मार खाकर भी उसे पूरा करना जानता था। यद्यपि उसे चित्तौड़ के रण-बाँकुरों से बुरी तरह हार खानी पड़ी तो भी उसका मन टूटा नहीं। उसने अपने वैभव की ओर देखा, विशाल सेना की ओर दृष्टि डाली और अपने बल का अन्दाजा लगाया। इसके बाद चित्तौड़ पर चढ़ाई करने का निश्चय कर लिया। निश्चय ही नहीं, उसने अपने सामन्तों के सामने प्रतिज्ञा की कि बिना विजय के लौटना हराम समझूँगा। चित्तौड़ को ध्वंस किये बिना जीते जी मैं दिल्ली में पैर नहीं रक्खूँगा और राजपूतों के खून से नहाये बिना जो कोई लौटेगा उसकी बोटी-बोटी काटकर कुत्तों के सामने डाल दूँगा। उसकी वह भीषण प्रतिज्ञा मौत की ललकार की तरह रानी के कानों में पड़ी, जैसे किसी

ने पिघला हुआ राँगा डाल दिया हो। वह तिलमिला उठी। मौत के डर से नहीं, रावल की विरह-वेदना से।

महारानी पद्मिनी भी शत्रु को हराकर निश्चिन्त नहीं हो गयी थीं, बल्कि रात-दिन उसके आक्रमण की प्रतीक्षा ही कर रही थीं। वह अपने पति के मुख से उसके स्वभाव को सुन चुकी थी, उसकी पशुता से अनभिज्ञ नहीं थी और न उसकी निर्दयता से अपरिचित ही। वह जानती थी कि एक न एक दिन उसका आक्रमण होगा जो चित्तौड़ की नींव तक हिला देगा।

वह सिहर उठती थी, ईश्वर की शरण में जाती थी और रावल का विरह सोचकर कराह उठती थी, किन्तु अन्तःकरण की प्रवलता उसके निर्मल मुख पर शीशे के भीतर दीप की तरह झलकती थी—स्पष्ट, अविकार और निर्मल।

रात्रि का दूसरा पहर बीत रहा था, तरु-तरु पात-पात में नीरवता छायी थी, नियति तृणों पर मोतियों के तरल दाने विखेर रही थी, कुहासा पड़ रहा था, चाँद के साथ तारे छिप गये थे, मानो आँचल से दीप बुझाकर निशा-सुन्दरी सो रही थी—मौन, निश्चल और निस्तब्ध।

चित्तौड़ के पूर्व चित्तौड़ी नाम की एक छोटी-सी पहाड़ी है, दुर्ग से विल्कुल सटी हुई। चित्तौड़ तीर्थ के यात्री जव कभी दर्शन के लिए उस पवित्र दुर्ग पर जाते हैं तव एक दृष्टि उस पहाड़ी पर भी डाल लेते हैं; किन्तु दूसरे ही क्षण घृणा से मुँह फेर लेते हैं, क्योंकि उनके सामने सात सौ वर्ष पूर्व का इतिहास नाचने लगता है—सौ सौ रूपों से अलाउद्दीन की नृशंसता, राजपूतों का वलिदान और जौहर की धधकती आग········। दर्शन के बाद जब यात्री चित्तौड़ के चक्करदार रास्ते से उतरने लगते हैं तव उनकी पवित्र भावनाओं के साथ पीड़ा सटी रहती है—जीवन के साथ मृत्यु की तरह।

उस अन्ध रजनी में सारी सृष्टि सो रही थी, किन्तु

अलाउद्दीन अपने सिपाहियों को ललकार-ललकारकर चित्तौड़ी पर कङ्कड़-पत्थरों का ढेर लगवा रहा था, इसलिए कि वह चित्तौड़ की ऊँचाई पा जाय। वही हुआ, थोड़े समय के परिश्रम से वह इतना ऊँचा हो गया कि उस पर से चित्तौड़ के छोटे छोटे जीव भी दिखाई देने लगे। उस पर उसने गोले बरसानेवाली तोपें रखवायीं। भय से चित्तौड़ काँप उठा।

अलाउद्दीन ने दूसरे दिन चित्तौड़ पर बड़े वेग से आक्रमण किया। राजपूत भी असावधान न थे। युद्ध आरम्भ हो गया, चित्तौड़ी पर की भीमकाय तोपें गरज-गरजकर राजपूत-दल का संहार करने लगीं। जीवन की ममता छोड़कर राजपूत भी शत्रुओं के शोणित से नहाने लगे। पाषाणों में बल खाती हुई रक्त की धाराएँ निकल पड़ीं। सिंहद्वार के युद्ध में राजपूतों ने वह साहस और वीरता दिखलाई कि शत्रु के दाँत खट्टे हो गये, दुर्ग में घुसना उनके लिए कठिन ही नहीं, असम्भव हो गया। पैंतरे देते और तलवारें भाँजते हुए वीर-केसरियों का लोमहर्षण संग्राम देखकर शत्रुओं का साहस ढीला पड़ गया। जैसे-जैसे राजपूतों की वीरता का परिचय मिलता वैसे-वैसे विजय के बारे में उन्हें सन्देह होने लगा।

दूसरी ओर चित्तौड़ी तोपें आग उगल रही थीं, चित्तौड़ के मकान तड़-तड़ के भैरवनाद के साथ धाँय धाँय जल रहे थे। अनाथ की तरह। हथसारों में बँधे हाथी और घुड़सारों में बँधे घोड़े खड़े-खड़े झुलस गये। गड़गड़ाकर गोले गिरे, भूडोल की तरह चित्तौड़ की नींव हिल उठी, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ जड़ से उखड़ गयीं, मन्दिरों के साथ देव-मूर्तियों के टुकड़े-टुकड़े हो गये। मानवता के सीने पर दानवता ताण्डव कर रही थी, गढ़ का चीत्कार तोपों की गड़गड़ाहट में विलीन हो गया। चित्तौड़ के दुर्ग से आकाश तक धूल ही धूल, धूम ही धूम। मानो उनचासों पवन के साथ अनेक ववंडर उठे

हों। तलवारों और बरछों से युद्ध करनेवाले किंकर्त्तव्य-विमूढ़ राजपूत दुर्ग के ऊपर प्रलय का कोप देख रहे थे। उनकी विकल आँखों में एक बूँद आँसू भी नहीं था, न मालूम क्यों ?

सन्ध्या हुई, रजनी ने अपनी काली चादर तान दी, कलमुँही रात का घोर अन्धकार दिशाओं में फैल गया और आकाश अपनी अगणित आँखों से दुर्ग का भयानक दृश्य देखने लगा।

बापा रावल से बीसवीं पीढ़ी में रणसिंह नाम के एक बहुत पराक्रमी राजा हो गये हैं। उनसे रावल और राणा नाम की दो शाखाएँ फूटीं। रावलवंशीय रतनसिंह चित्तौड़ के अन्तिम शासक थे और राणा शाखावाले सीसोदे की जागीर पाकर वहीं राज करते थे। वहाँ के अधिपति लक्ष्मणसिंह रावल रतनसिंह से दूध-पानी की तरह मिले थे, अलाउद्दीन से दोनों मिलकर लड़ रहे थे, दोनों के जनबल से चित्तौड़ की रक्षा की जा रही थी।

आधी रात का समय था, प्रकृति निद्रा के अंक में लय हो रही थी, सर्वत्र निस्तब्धता छायी थी, झींगुरों के भी गायन बन्द थे। राणा लक्ष्मणसिंह अपने शयनागार में चित्तौड़ के गौरव की चिन्ता से व्याकुल हो रहे थे, पलँग पर निस्तेज सूर्य की तरह पड़े थे, बार-बार करवटें बदल रहे थे, नींद कोसों दूर थी। सोच रहे थे किस तरह बापा के गौरव की रक्षा होगी, किस तरह इस आगत विपत्ति से चित्तौड़ का उद्धार होगा और किस तरह एक क्षत्राणी के पातिव्रत का तेज रक्षित रहेगा। उनकी चिन्ता क्षण-क्षण बढ़ती जा रही थी, उनकी आँखों में नींद नहीं, आँसू थे। इतने में निशीथिनी की निद्रा भंग करते हुए किसी के गम्भीर कण्ठ से शब्द निकला—"मैं भूखी हूँ"। राणा का रोम-रोम सिहर उठा, कलेजा काँपने लगा। हड़बड़ाकर उठे और पलंग पर बैठ गये, उनकी चपल आँखें कमरे में दौड़ने

लगीं, क्षण भर बाद उन्होंने देखा कि द्वार के एक किवाड़ का सहारा लिये चित्तौड़ की अधिष्ठात्री देवी खड़ी है। राणा उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठ से बोले—"इतने राजपूतों के रक्त से भी तेरी भूख नहीं मिटी? तेरी प्यास नहीं बुझी? हाय!" उत्तर मिला—"नहीं, मैं राजरक्त चाहती हूँ", यदि तेरे राजकुमार एक एक कर युद्ध में नहीं उतरेंगे तो मेवाड़ से बापा रावल की कीर्ति इस बवंडर के साथ ही धूल की तरह उड़ जायेगी।" देवी अन्तर्धान हो गयी और उनकी आज्ञा राणा के कलेजे में नेजे की तरह धँस गयी। दीवालों पर पढ़ा—'नहीं, मैं राजरक्त चाहती हूँ'; कानों में गूँज रहा था—'नहीं, मैं राजरक्त चाहती हूँ'।

प्रातःकाल होते ही राणा लक्ष्मणसिंह ने अपने पुत्रों को बुलाया और रात की सारी घटना कह सुनायी। विषाद के बदले वीर राजकुमारों के मुखमण्डल पर प्रसन्नता फूट पड़ी। क्यों न हो; वीर कलङ्क से डरते हैं, मौत से नहीं। युद्ध-भूमि में जाने के लिए उतावले हो उठे, वे एक दूसरे से लड़ पड़े कि 'पहले मैं जाऊँगा'। यह देखकर राणा का भी हृदय उत्साह से भर गया। उस वीर ने एक दिव्य मुसकान के साथ समझा-बुझाकर सबको शान्त किया। बड़े होने के कारण अपने पुत्र अरिसिंह की पीठ ठोंकी, राजमुकुट पहनाया और तिलक देकर युद्ध के लिए भेज दिया। अपनी तीखी तलवार से असंख्य शत्रुओं के सिर काटते हुए वे मौत के खुले मुख में हथियार लिये ही घुस गये। इस तरह एक एक कर जब सात राजकुमार वैरियों की कराहती लाशों पर अपनी अन्तिम साँस ले चुके, तब सबसे कनिष्ठ पुत्र अजयसिंह ने शत्रुओं को ललकारा; किन्तु अगणित वैरियों के हाहाकार में एक की ललकार ही क्या। विकट संग्राम करने के बाद किसी शत्रु की तलवार की

चोट से घायल होकर गिर पड़े। राजपूतों ने सुरंग द्वारा उन्हें केलवाड़े के सुरक्षित पहाड़ों में भेज दिया। यदि उनकी चोट और गहरी हो जाती तो······।

राजकुमारों के बलिदान से राणा लक्ष्मणसिंह की भुजाओं में असीम शक्ति बढ़ गयी, जर्जर शरीर में एक बार यौवन फिर लौट आया। खूनी आँखें दिशाओं में घूम गयीं, उन्मत्त सिंह की तरह पैंतरे बदलते हुए मैदान में उतर पड़े। भयङ्कर साँप की तरह फुफकारती हुई उनकी तलवार बढ़ी, मैदान साफ। सामने उछलती कूदती हुई लाशों का दृश्य भयावह हो गया। किन्तु खिजली दल की बाढ़ में अधिक देर तक टिक न सके। शत्रुओं के कण्ठों से तलवार निकालते हुए समर के यज्ञ में अपनी एक आहुति और बढ़ा दी। देवी के चरणों पर एक शिर और चढ़ा दिया। चित्तौड़ की राष्ट्रीय पताका काँप उठी और हिल उठा सिसोदिया का अजेय सिंहासन।

सन्ध्याकाल की लाली धीरे-धीरे मिट रही थी और उस पर निशा कालिख पोत रही थी, बड़ी लगन के साथ। न मालूम क्यों! आकाश पर तारे झिलमिला रहे थे। मानो काली चादर पर किसी ने बेलबूटे काढ़ दिये हों।

देश के गौरव और जाति के सम्मान के लिए राणा लक्ष्मणसिंह के स्वाहा हो जाने के साथ-साथ प्रजावर्ग का रहा-सहा साहस भी जाता रहा, उन्हें विश्वास हो गया कि निकट भविष्य में चित्तौड़ की हार निश्चित है। इसलिए चित्तौड़ के निवासी नगर के खँडहरों से निकलकर एक टीले पर इकट्ठे हो गये, विमन-विमन, मौन-मौन।

महारानी पद्मिनी जिसके पवित्र किन्तु घातक सौन्दर्य ने चित्तौड़ को धूल में मिला दिया, चन्द्र-ज्योत्स्ना-सी राजमहल से निकलीं, जाति-धर्म की रक्षा के लिए मरे हुए शहीदों पर फूल चढ़ाती और विदा के गीत गाती हुई रावल रतनसिंह के साथ वहाँ पहुँची जहाँ वीर देश

की प्रजा चिन्ता-सागर में डूब-उतरा रही थी; उसे न कोई पथ मिल रहा था, न पथ-प्रदर्शक।

'महारानी की जय' के निनाद से रात्रि का नीरव वातावरण मुखरित हो उठा। दुःख और चिन्ता की जगह साहस उमड़ने लगा। रगों में रक्त की गति तीव्र हो गयी, क्षण भर बाद रानी की निर्भीकवाणी गरज उठी—"धर्म की बलिवेदी पर बलि हो जाना चित्तौड़ ने सीखा है और किसी देश ने नहीं, माँ-बहनों के सम्मान पर मिट जाना राजपूतों ने समझा है और किसी जाति ने नहीं और स्वाभिमान के रक्षण के लिए जीवन को तृण की तरह बहा देना बापा रावल के वंशज जानते हैं, दूसरे नहीं। तुम्हारे गौरव की गाथा पवन के हिंडोले पर झूलती रहेगी और वीरता की कहानी दिशाओं में गूँजती रहेगी—रामायण और महाभारत की तरह।

राजपूतों के लिए तो युद्ध ही शिवपुरी और वाराणसी है, स्वर्ग तक सीढ़ी लगा दो, तुम्हारे स्वागत के लिए देव आतुर हो उठे हैं। वीरो, आगे से तुमको मुक्ति बुलाती है और पीछे मुँह बाये भयङ्कर नरक खड़ा है। बोलो, आगे बढ़ोगे कि पीछे हटोगे? नरसिंहो, गढ़ की काली रूठ गयी है, अब दुर्ग की रक्षा हो नहीं सकती। हाँ, उसका गौरव तुम्हारे साहस की ओर देख रहा है, शत्रु की असंख्य वाहिनी की विजय मुट्ठी भर राजपूतों की वीरता से दब जायगी, इसलिए एक बार फिर साहस करो आन की रक्षा के लिए, एक बार फिर हुंकार करो नारियों के पातिव्रत के लिए और एक बार फिर गरजो कुल की मर्यादा के लिए। सफलता जीवन और मृत्यु के उस पार है।

क्षत्रियों के आत्मबल की और क्षत्राणियों की दृढ़ता की कठिन परीक्षा अब है। अबतक का युद्ध तो खिलवाड़ था, यह तो चित्तौड़ का नित्यकर्म है। तुम्हारे सौभाग्य से कर्त्तव्य अब आया है, पालन करोगे? बोलो तो!"

अनेक दृढ़ कण्ठों से निकल पड़ा—"हाँ, राजलक्ष्मी की आज्ञा शिर आँखों पर।"

"वीरो, चित्तौड़ की भूमि कृतार्थ हुई। जौहर के लिए सन्नद्ध हो जाओ। आवाल वृद्ध राजपूत केसरिया बाना पहन और हाथों में नंगी तलवार लेकर अन्तिम वार दुर्ग के बाहर निकल पड़ें, मिटने और मिटाने के लिए। लेकिन यह याद रहे कि यदि फाटक के भीतर एक भी राजपूत का बच्चा रह जायेगा तो व्रत-भङ्ग होने का भय है और क्षत्राणियाँ धधकती हुई चिता की भयंकर ज्वाला में कूद पड़ें दीपशिखा पर पतंगों की तरह। स्वाभिमानी राष्ट्रों के सामने एक आदर्श के लिए। पुरुषों के व्रत में सबसे आगे मेरे पतिदेव और नारियों के व्रत में मैं रहूँगी। स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक यही उपाय है, बस!"

महारानी और रावल के व्योम-विदारक जय-निनाद से चित्तौड़ी की तोपें हिल उठीं।

जौहर का हृदय-द्रावक कार्य आरम्भ हो गया। राजपूतों ने कठिन परिश्रम कर धूप, चन्दन, आम और गुग्गुल की सुगन्धित लकड़ियों की एक विशाल चिता बनायी। उस पर मनों घी, तेल आदि अनेक दह्य पदार्थ छिड़क दिये गये, बात की बात में चिता से सटकर एक ऊँचा चबूतरा बन गया ताकि उस पर चढ़कर देश की वीराङ्गनाएँ चिता की प्रचण्ड लपटों में कूद-कूदकर जौहर व्रत की साधना करें। वीर राजपूत केसरिया वस्त्र धारण कर चिता के चारों ओर बैठ गये। उनकी बगल में नङ्गी तलवार और सामने शाकल्य, घी, खीर आदि हवन के सामान थे। चिता में आग लगा दी गयी और स्वाहा स्वाहा कर भयद और करुण मन्त्रों से आहुति देने लगे, अग्नि की भयावह लपटें खीर खातीं और घी पीती हुईं आकाश की ओर बढ़ चलीं।

इधर चित्तौड़ की वीराङ्गनाओं के साथ वीर सती पद्मिनी ने शृङ्गार किया, माथे पर सिन्दूर चमक उठा, पैरों में महावर की लाली दमक उठी, शरीर से सौन्दर्य

फूट पड़ा, शत-शत प्रकाश से। किसी ने कहा लक्ष्मी, किसी ने सरस्वती; किन्तु वह न लक्ष्मी थी न सरस्वती, वह थी पद्मिनी जो मेधा, घृति और क्षमा की तरह पवित्र, अपने ही समान सुन्दर। पूजा की थाली लेकर वह दुर्ग की वीर-नारियों के साथ शिव-मन्दिर की ओर चली; तारों में चाँद की तरह, घनमाला में बिजली की तरह।

कुल-वधुओं ने शिव-प्रतिमा का तो दूर से ही अभिवादन किया, किन्तु पार्वती के चरणों पर सबकी सब गिरकर रोने लगीं—"माँ, दक्षयज्ञ के हवन-कुण्ड में जिस साहस से कूद पड़ीं वही साहस हम अवलाओं को दे।" पाषाण की प्रतिमा पसीज उठी। देवताओं ने नारियों पर फूलों की वर्षा की। सतियाँ चिता की ओर चल पड़ीं।

पृथ्वी वेदना के भार से दबी जा रही थी, चित्तौड़-वासियों की दशा पर प्रकृति फूट-फूटकर रो रही थी। मारुत तीव्रगति से भागा जा रहा था, यामिनी चीख रही थी, तारे गगन पर काँप रहे थे और दिशाएँ त्राहि-त्राहि पुकार रही थीं, किन्तु उस समय चित्तौड़-निवासियों को कोई देखता तो आश्चर्य में डूब जाता। उनके मुख-मण्डल पर विषाद का कोई चिह्न नहीं था। वे हर्ष से उत्फुल्ल हो रहे थे।

देखते ही देखते पद्मिनी अपनी सहचरियों को लेकर चबूतरे पर खड़ी हो गयी। भाई ने बहन को, पुत्र ने माता को, पिता ने कन्या को और पति ने पत्नी को देखा, किन्तु जैसे के तैसे स्थिर रहे। हिल न सके। पारिवारिक प्रेम को देश के प्रेम ने दबा दिया।

महारानी ने पहले अग्नि की पूजा की। इसके बाद हवन करते हुए राजपूतों पर दृष्टि डाली, वह्नि की प्रचण्ड लपटों पर आँखें फेरी और अनन्त आकाश की ओर देखा। राजपूतों ने साँस रोक ली, तारे गगन की छाती से चिपक गये और दिशाएँ सिहरकर दबक गयीं। राज-पूतों के साथ रावल ने काँपते हुए हाथों से चिता में घी डाला और चरु की आहुति दी। आग हाहाकार करती

हर-हराती हुई पद्मिनी का रूप ज्वाला में पचाने के लिए आकाश की छाती जलाने लगी। इधर राजपूतों के शत-शत कण्ठों से स्वाहा-स्वाहा का कम्पित स्वर निकला, उधर रूप-यौवन के साथ पद्मिनी का शरीर घास-फूस की तरह जलने लगा। अब देर क्या थी। वीर ललनाएँ एक पर एक आग में कूद-कूदकर मौत को ललकारने लगीं।

आसमान टूटकर गिरा नहीं, चाँद फूटकर गिरा नहीं, पृथ्वी फटी नहीं, दुनिया घटी नहीं, किन्तु चित्तौड़ की वीर नारियाँ जलकर राख हो गयीं। सतीत्व की रक्षा का अमोघ अस्त्र मृत्यु है।

अपनी माँ-बहनों को इस तरह मृत्यु के मुख में जाते हुए देखकर राजपूतों की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, भौंहें तन गयीं और चेहरे तमतमा उठे, आग-सहित चिता की राख को शरीर में मल लिया।

नंगी तलवारें आकाश में चमचमायीं और दूसरे ही क्षण वे अपने गौरव की रक्षा के लिए घायल सिंह की तरह वैरी-दल पर टूट पड़े और गाजर मूली की तरह काटने लगे। दोनों ओर के वीर आँखें मूँदकर तलवारें चला रहे थे। मुरदों से भूमि पट गयी। अरि-दल चकित और चिन्तित हो उठा, किन्तु अलाउद्दीन की विशाल सेना के सामने सौ-पचास राजपूतों की गणना ही क्या। उनका सारा पौरुष रक्त के रूप में बहने लगा। प्रत्येक राजपूत अपनी अन्तिम साँस तक लड़ता रहा। किसी ने भी अपनी जीवन-रक्षा कर अपने को तथा चित्तौड़ को कलङ्कित नहीं किया। जौहर का भयङ्कर व्रत समाप्त हो गया।

राजपूतों के शोणित की वह गंगा दो दिन में सूख गयी होगी और चिता की वह आग भी बुझ गयी होगी, किन्तु वह गरम रक्त अब भी रगों में प्रवाहित है और वह आग आज भी हृदय में धधक रही है। बुझे तो कैसे ?

एक रूप-पिपासित हृदय-हीन व्यक्ति के कारण रावल-वंश की इतिश्री हो गयी। चित्तौड़ का उत्फुल्ल नगर भयङ्कर और वीरान हो गया। भारत के और रजवाड़े कान

में तेल डालकर पड़े रहे। किन्तु चित्तौड़ के बलिदान की पवित्र कहानी आज भी दिशाओं में गूंज रही है।

अपनी मातृ-भूमि की रक्षा के लिए एक-एक कर सभी राजपूतों के मारे जाने पर अलाउद्दील चित्तौड़ में घुसा। उसके भाले की नोक पर रावल रतन सिंह का शिर लटक रहा था, उसके साथी नंगी तलवार लिये पीछे पीछे चल रहे थे, सबके सब ऊपर से तो निर्भीक थे, किन्तु उनका अन्तर मुरदों से काँप रहा था, किसी भी मुरदे की खुली आँखें देखकर चौंक पड़ते थे। राजपूतों की वीरता का प्रभाव उनके मिट जाने पर भी शत्रुओं के हृदय में विद्यमान था। टूटे खँडहरों में, सूने घरों में और भग्न-मन्दिरों में शहीदों की लाशें सड़ रही थीं। जन-शून्य पथों पर और सुनसान चौराहों पर मुरदे बिखरे पड़े थे।

उन अभागों को कफन भी नहीं मिल सका और न कुल में कोई संस्कार करने वाला ही बचा। खूनों से लथपथ सो रहे थे, उनके मुँह पर सरपत के साथ आग क्या, किसी ने एक चिनगारी भी नहीं रखी। उन्हें चील, कौए, गीध और स्यार फाड़-फाड़कर खा रहे थे, जगह जगह पर गड्ढों में रक्त जम गये थे; झगड़ते हुए कुत्ते उन्हें लपर लपर चाट रहे थे। बड़ा ही भयानक दृश्य था, बड़ा ही लोमहर्षण।

पद्मिनी को खोजते हुए अलाउद्दीन ने चारों ओर बिखरे हुए मुरदों को देखा, लेकिन वह मुसकराकर रह गया, बोला नहीं।

एक ओर चिता से धीरे-धीरे धुआँ निकल रहा था। चमड़ों के सनसनाने, चर्बी के फसफसाने, मांस के सीझने और हड्डियों के चटखने के अशिव-नाद से चित्तौड़ का मौन भंग हो रहा था, हवा के साथ दुर्गन्ध दूर-दूर जा रही थी; जौहर का सन्देश लेकर।

अलाउद्दीन उन्मत्त की भाँति पद्मिनी को ढूँढ़ रहा था, लेकिन उसे पद्मिनी नहीं मिली। वह चाहता था किसी से उसका पता पूछना; किन्तु चित्तौड़ के उस विशाल

नगर में उसे एक भी जीवित प्राणी नहीं मिला, जो उससे पद्मिनी की चर्चा करता। घूम-घूमकर देखा लेकिन निराश। वह व्याकुल हो उठा। अपना क्रोध बिखरे हुए मुरदों पर उतारना ही चाहता था कि मुरदों में घूमती हुई अचानक उसे एक बुढ़िया मिली। उसने पूछा—"जिसके लिये मैंने चित्तौड़ को धूल में मिला दिया, वह विश्वमोहिनी पद्मिनी कहाँ है? उसका क्या पता है? बताओ, एक एक अक्षर पर एक एक मणि दूँगा।" प्रश्न सुनकर बुढ़िया की आँखों में आँसू आ गये, फटे आँचल से आँखें पोंछकर चिता के धूम की ओर इशारा किया। आतुर अलाउद्दीन की उत्सुक आँखें चिता के दुर्गन्धित धुएँ की ओर उठीं, लेकिन यह क्या, अलाउद्दीन काँप क्यों रहा है, पसीने से तर क्यों हो गया और उसके हाथ का माला रावल रतनसिंह का शिर लिए जमीन पर ठन से गिरा क्यों?

चिता के धूम से ज्योति और ज्योति से हाथों में कटार लिये महारानी पद्मिनी भैरवनाद कर अलाउद्दीन की ओर बढ़ी, उसकी हिंसक आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह पापी भय से चिल्ला उठा, उसकी चिल्लाहट से मुरदों को फाड़ते हुए कुत्ते चौंककर भूँकने लगे। प्राण-रक्षा के लिए कातर आँखों से बुढ़िया की ओर देखा, किन्तु बुढ़िया की जगह पर सिंहवाहिनी अष्टभुजी तड़प उठी। खून की प्यासी तलवार उसकी गर्दन पर गिरने ही वाली थी कि उसकी आँखें बन्द हो गयीं। मूर्छित होकर गिर पड़ा। उसकी सारी कामनाएँ उसके मुँह से गाज होकर निकलने लगीं। साथ के सिपाही उस जीवित मुरदे को उठाकर दिल्ली ले गये। उस हृदयहीन हत्यारे को देखकर उसके सगे-सम्बन्धी भी धिक्कारने लगे। वह स्वयं भी अपने किये हुए पर पछता रहा था, फूट-फूटकर रो रहा था और उसके अन्तर की वेदना उठ-उठकर समझा रही थी। उसके भरे परिवार में चुप करानेवाला दूसरा नहीं था। उसकी विजय सौ-सौ हार से बुरी निकली।

उस सम्राट् के छत्र पर जो कलङ्क का धब्बा लगा वह आज तक नहीं मिटा। आज भी हिन्दू-मुसलमान दोनों उस घृणित विजयी के नाम पर थूक देते हैं। आगे उसका क्या हाल हुआ, यह तो मालूम नहीं, लेकिन हाँ, यह मालूम है कि उसने फिर कभी किसी राष्ट्र के साथ ऐसा दुर्व्यवहार नहीं किया।

हाँ, पद्मिनी के बारे में तभी से एक किंवदन्ती चली आ रही है, जिसे सुनकर किसी को भी आश्चर्य हो सकता है, किन्तु है सत्य !

महारानी पद्मिनी अर्धरात्रि के मौन प्रहर में जौहर के गीत गाती हुई चित्तौड़ के शिखर पर उतरकर भग्न खँड़हरों में गोरा-बादल को पुकारती है। बन्दी को कारा से मुक्त करने के लिए समाधियों से जौहर के शहीदों को जगाती है। शान्त निशीथिनी में यदि कोई कान लगाकर सुने तो रानी की वीरवाणी अवश्य सुनाई देगी। अस्तु।

इस महाकाव्य के आख्यान का सारांश तो यही है, कतिपय चिनगारियों में कल्पनाओं का चमत्कार अवश्य है जो पुस्तक के पारायण से ही मालूम हो सकेगा। दो चार पन्नों के उलटने से नहीं।

'हल्दीघाटी' लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा और, 'जौहर' लिखकर एक भारतीय सती नारी का; इसलिए नहीं कि कोई छन्दों के प्रवाह में झूम उठे, बल्कि इसलिये कि भारतीय पुरुष 'प्रताप' को समझें और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी' को पहचानें।

'जौहर' के छन्दों का चुनाव उसके विषय के अनुकूल हुआ है। सम्भव है चुनाव ठीक न उतरा हो, लेकिन कविता की विद्युत्धारा हृदय को छूती चलेगी। कभी आँखों में आग, कभी पानी, कभी प्रलय की ज्वाला तो कभी कुर्बानी।

श्रीमद्भागवत की संकल्पित कथा जिस पवित्रता और श्रद्धा के साथ पौराणिक व्यास तीर्थ से लौटे हुए अपने यजमान को सुनाता है उसी तरह पुलक-पुलक कर भावुक पुजारी ने अधिकारी पथिक को 'जौहर' की कथा सुनायी है।

"'जौहर' का पाठ करते समय पाठक को पुजारी और पथिक दोनों मिलेंगे, सिद्ध-साधक के रूप में, ज्ञाता-जिज्ञासु के रूप में, गुरू और शिष्य के रूप में।

पाठक के मानस-मन्दिर में यदि पद्मिनी की पावन-प्रतिमा और आँखों के सामने पुजारी और पथिक का वह दृश्य न रहा तो 'जौहर' की चिनगारियों का ताप असह्य हो जायेगा और यदि रहा तो चिनगारियों से आँखों को ज्योति मिलेगी—अपनी संस्कृति, अपनी कुल-मर्यादा और अपने स्वाभिमान को देखने के लिए।

मानव ऊपर से ही सुन्दर और सत्य है भीतर से उसके ठीक विपरीत। यदि उसके अन्तर की चित्रावली सामने होती तो मानव एक-दूसरे के ऊपर थूक देता, घृणा से! खून चूस लेता, क्रोध से! उसकी बर्बरता और उच्छृङ्खलता से विश्व में वह क्रान्ति मचती कि पृथ्वी निर्जीव, जनहीन और भयंकर हो जाती। यही विधाता की प्रतिभा का चरम विकास है। यही वृद्ध पितामह के युग-युग से अभ्यस्त हस्त का कौशल है और यही रचना। जब मानव स्रष्टा का भ्रम ही है तब भला उसकी रचना कब भ्रम से भिन्न रहेगी। सम्भव है इस काव्य में अनेक दूषण हों, पर पद्मिनी के साहचर्य से भूषण बन गये हैं। पुण्य-सलिला गंगा की स्वच्छन्द धारा में पड़कर कौन-सी अपावन वस्तु अपावन रह जाती है?

'जौहर' के बारे में जो कुछ मुझे कहना था कह चुका, शेष कहने के लिए हिन्दी जगत् में अनेक प्रवृत्तियों के जीव विद्यमान हैं—कवि, लेखक और समालोचक जो बिना पूछे अपनी राय देने के लिए कटिबद्ध मिलेंगे। किन्तु मुझे इस बात का अभिमान है कि 'जौहर' लिखकर मैंने अपनी संस्कृति की पूजा की है।

आवृत्ति पर आवृत्ति

इतने अल्पकाल में 'जौहर' का संस्करण पर संस्करण आश्चर्यजनक घटना नहीं है। जौहर के छन्द पहले ही से श्रवणरन्ध्रों से हृदय में उतर रहे थे, प्रकाशित होने पर यदि आँखों ने उन्हें कण्ठ-पथ से उतरने की क्रिया बतलाई तो इसमें आश्चर्य-चकित होने की कोई बात नहीं। मैं तो यह जानता था कि 'जौहर' अपनी आर्य-संस्कृति के संरक्षण में सहायक होगा और संस्कृति के पुजारियों की कमी नहीं, इसलिये इसका प्रचार स्वयंसिद्ध है। फिर भी प्रकाशन की विरूपता तथा चित्रों की विचित्रता से दहशत अवश्य थी; किन्तु पाठक उधर ध्यान न देकर केवल विषय की ओर ही आकर्षित रहे, इसका मुझे अत्यन्त हर्ष है।

'जौहर' से साहित्य, देश, जाति और धर्म का क्या लाभ हुआ यह तो मुझे मालूम नहीं; किन्तु यह अच्छी तरह अवगत है कि इस संघर्ष-काल में आर्य-संस्कृति के रक्षकों को जौहर के छन्दों ने मन्त्रों से भी अधिक बल दिया है, जो सर्वत्र स्पष्ट है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने 'जौहर' को पुरस्कृत करके उसे तीन वर्ष के भीतर का सर्वश्रेष्ठ काव्यग्रन्थ घोषित करने की जो कृपा की है उससे वास्तव में मैं अत्यधिक गौरवान्वित हुआ हूँ। सभा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करके ही मेरे कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती, अपितु मेरा हृदय प्रसन्नता से परिपूर्ण है।

कार्तिकी, २०२१ वि०
डुमग्राम, आजमगढ़ } श्रीश्यामनारायण पाण्डेय

जौहर

?

गगन के उस पार क्या,
पाताल के इस पार क्या है ?
क्या क्षितिज के पार ? जग
जिस पर थमा आधार क्या है ?

दीप तारों के जलाकर
कौन नित करता दिवाली ?
चाँद-सूरज घूम किसकी
आरती करते निराली ?

चाहता है सिन्धु किस पर
जल चढ़ाकर मुक्त होना ?
चाहता है मेघ किसके
चरण को अविराम धोना ?

तिमिर-पलकें खोलकर
प्राची दिशा से झाँकती है ;
माँग में सिन्दूर दे
ऊषा किसे नित ताकती है ?

गगन में सन्ध्या समय
किसके सुयश का गान होता ?
पक्षियों के राग में किस
मधुर का मधु-दान होता ?

पवन पङ्खा झल रहा है,
गीत कोयल गा रही है।
कौन है? किसमें निरन्तर
जग-विभूति समा रही है?

तूलिका से कौन रँग देता
तितिलियों के परों को?
कौन फूलों के वसन को,
कौन रवि-शशि के करों को?

कौन निर्माता? कहाँ है?
नाम क्या है? धाम क्या है?
आदि का निर्माण क्या है?
अन्त का परिणाम क्या है?

खोजता वन-वन तिमिर का
ब्रह्म पर परदा लगाकर।
ढूँढता है अन्ध मानव
ज्योति अपने में छिपाकर॥

बावला उन्मत्त जग से
पूछता अपना ठिकाना।
घूम अगणित बार आया,
आज तक जग को न जाना॥

सोचता जिससे वही है,
बोलता जिससे वही है।
देखने को बन्द आँखें
खोलता जिससे वही है?

आँख में है ज्योति बनकर
साँस में है वायु बनकर
देखता जग-निधन पल-पल,
प्राण में है आयु बनकर॥

शब्द में है अर्थ बनकर
अर्थ में है शब्द बनकर।
जा रहे युग-कल्प उनमें,
जा रहा है अब्द बनकर।।

यदि मिला साकार तो वह,
अवध का अभिराम होगा।
हृदय उसका धाम होगा,
नाम उसका राम होगा।।

सृष्टि रचकर ज्योति दी है,
शशि वही, सविता वही है।
काव्य-रचना कर रहा है,
कवि वही, कविता वही है।।

सारंग, चैत्री,
काशी १९९६

पहली चिनगारी

माधव-निकुञ्ज
काशी

कार्तिकी,
१९९६

थाल सजाकर किसे पूजने
चले प्रात ही मतवाले ?
कहाँ चले तुम राम नाम का
पीताम्बर तन पर डाले ?

कहाँ चले ले चन्दन अक्षत
बगल दबाये मृगछाला ?
कहाँ चली यह सजी आरती ?
कहाँ चली जूही — माला ?

ले मुञ्जी उपवीत मेखला
कहाँ चले तुम दीवाने ?
जल से भरा कमण्डलु लेकर
किसे चले तुम नहलाने ?

मौलसिरी का यह गजरा
किसके गल से पावन होगा ?
रोम कण्टकित प्रेम – भरी
इन आँखों में सावन होगा ?

चले झूमते मस्ती से तुम,
क्या अपना पथ आये भूल ?
कहाँ तुम्हारा दीप जलेगा,
कहाँ चढ़ेगा माला – फूल ?

इधर प्रयाग न गङ्गासागर,
इधर न रामेश्वर, काशी।
कहाँ किधर है तीर्थ तुम्हारा?
कहाँ चले तुम सन्यासी?

क्षण भर थमकर मुझे बता दो,
तुम्हें कहाँ को जाना है?
मन्त्र फूँकनेवाला जग पर
अजब तुम्हारा बाना है॥

नंगे पैर चल पड़े पागल,
काँटों की परवाह नहीं।
कितनी दूर अभी जाना है?
इधर विपिन है, राह नहीं॥

मुझे न जाना गङ्गासागर,
मुझे न रामेश्वर, काशी।
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को,
मेरी आँखें प्यासी॥

अपने अचल स्वतन्त्र दुर्ग पर,
सुनकर वैरी की बोली।
निकल पड़ीं लेकर तलवारें,
जहाँ जवानों की टोली॥

जहाँ आन पर माँ-बहनों की,
जला-जला पावन होली।
वीर-मण्डली गर्वित स्वर से,
जय माँ की जय जय बोली॥

सुन्दरियों ने जहाँ देश-हित,
जौहर-व्रत करना सीखा।
स्वतन्त्रता के लिए जहाँ,
बच्चों ने भी मरना सीखा॥

वहीं जा रहा पूजा करने,
लेने सतियों की पद-धूल।
वहीं हमारा दीप जलेगा,
वहीं चढ़ेगा माला-फूल॥

वहीं मिलेगी शान्ति, वहीं पर
स्वस्थ हमारा मन होगा।
प्रतिमा की पूजा होगी,
तलवारों का दर्शन होगा॥

जहाँ पद्मिनी जौहर-व्रत कर
चढ़ी चिता की ज्वाला पर,
क्षण भर वहीं समाधि लगेगी,
बैठ इसी मृगछाला पर

नहीं रही, पर चिता-भस्म तो
होगा ही उस रानी का।
पड़ा कहीं न कहीं होगा ही,
चरण-चिह्न महरानी का॥

उस पर ही ये पूजा के सामान
सभी अर्पण होंगे।
चिता-भस्म-कण ही रानी के
दर्शन-हित दर्पण होंगे॥

आतुर पथिक चरण छू-छूकर
वीर-पुजारी से बोला;
और बैठने को तरु-नीचे,
कम्बल का आसन खोला॥

देरी तो होगी, पर प्रभुवर,
मैं न तुम्हें जाने दूँगा।
सती-कथा-रस-पान करूँगा,
और मन्त्र गुरु से लूँगा॥

कहो रतन की पूत कहानी,
रानी का आख्यान कहो।
कहो सकल जौहर की गाथा,
जन-जन का बलिदान कहो ॥

कितनी रूपवती रानी थी ?
पति में कितनी रमी हुई ?
अनुष्ठान जौहर का कैसे ?
संगर में क्या कमी हुई ?

अरि के अत्याचारों की
तुम सँभल सँभलकर कथा कहो।
कैसे जली किले पर होली ?
वीर-सती की व्यथा कहो ॥

नयन मूँदकर चुप न रहो,
गत-व्याधि, समाधि लगे न कहीं।
सती-कहानी कहने को
अन्तर से चाह भगे न कहीं ॥

आकुल कुल प्रश्नों को सुनकर,
मुकुलित नयनों को खोला।
वीर-करुण-रस-सिञ्चित स्वर से
सती-तीर्थ-यात्री बोला ॥

क्या न पद्मिनी-जौहर का
आख्यान सुना प्राचीनों से ?
क्या न पढ़ा इतिहास सती का
विद्या-निरत नवीनों से ?

यदि न सुनी तो सुनो कहानी
सती - पद्मिनी - रानी की
पर झुक-झुककर करो वन्दना,
पहले पहल भवानी की ॥

रूपवान था रतन पद्मिनी
रूपवती उसकी रानी।
दम्पति के तन की शोभा से
जगमग-जगमग रजधानी ॥

रानी की कोमलता पर
कोमलता ही वलिहारी थी।
छुईमुई-सी कुँभला जाती,
वह इतनी सुकुमारी थी ॥

राजमहल से छत पर निकली,
हँसती शशि – किरणें आयीं।
मलिन स्पर्श से रूप न हो,
इससे विहरीं बन परछाईं ॥

मलयानिल पर रहती थी,
वह कुसुम-सुरभि पर सोती थी।
जग की पलकों पर वसकर,
प्राणों से प्राण सँजोती थी ॥

ऊषा की स्वर्णिम किरणों
के झूले पर झूला करती।
राजमहल के नन्दन-वन में,
बेला-सी फूला करती ॥

बिखरे केशों में अँधियाली,
मुख पर छायी उजियाली।
राका-अमा-मिलन होता था,
भरी माँग की ले लाली ॥

बालों में सिन्दूर-चिह्न ही
था दो प्राणों का बन्धन।
मानो घनतम तिमिर चीरकर,
हँसी ऊषा की एक किरन ॥

बालमृगी-सी आँखों में
आकर्षण ने डेरा डाला।
सुधा-सिक्त विद्रुम-अधरों पर
मदिरा ने घेरा डाला॥

मधुर गुलाबी गालों पर,
मँडराती फिरती मधुपाली।
एक घूँट पति-साथ पिया मधु,
चढ़ी गुलाबी पर लाली॥

आँखों से सरसीरुह ने
सम्मोहन जा-जाकर सीखा॥
रानी का मधुवर्षी स्वर
कोयल ने गा-गाकर सीखा॥

घूँघट-पट हट गया लाज से,
मुसकायी जग मुसकाया।
निःश्वासों की सरस-सुरभि से
फूलों में मधुरस आया॥

अरुण कमल ने जिनके तप से
इतनी सी लाली पायी।
फूलों पर चलने से जिनमें
नवनी-सी मृदुता आयी॥

फैल रही थी दिग्दिगन्त में
जिनकी नख-छवि मतवाली,
उन पैरों पर सह न सकी
लाक्षारस की कृत्रिम लाली॥

नवल गुलाबों ने हँस-हँसकर
सुरभि रूप में भर डाली।
कमल-कोष से उड़-उड़कर
भौंरों ने भी भाँवर डाली॥

जैसी रूपवती रानी थी,
वैसा ही था पति पाया।
मानो वासव-साथ शची का
रूप धरातल पर आया॥

भरे यहीं से तन्त्र-मन्त्र
मनसिज ने अपने बाणों में।
पति के प्राणों में पत्नी थी,
पति, पत्नी के प्राणों में॥

दो मुख थे पर एक मधुरध्वनि,
दो मन थे पर एक लगन।
दो उर थे पर एक कल्पना,
एक मगन तो अन्य मगन॥

विरह नाम से ही व्याकुलता,
जीवन भर संयोग रहा।
एक मनोहर सिंहासन पर
सूर्य-प्रभा का योग रहा॥

रानी कहतो नव वसन्त में
कोयल किसको तोल रही।
पति के साथ सदा राका यह
कुहू-कुहू क्यों बोल रही?

सावन के रिमझिम में पापी
डाल-डाल पर डोला क्यों?
पी तो मेरे साथ-साथ
'पी कहाँ' पपीहा बोला क्यों?

त्रिभुवन के कोने-कोने में,
रूप-राशि की ख्याति हुई।
रूपवती के पातिव्रत पर
गर्वित नारी-जाति हुई॥

ग्राम-ग्राम में नगर-नगर में
डगर-डगर में, घर-घर में
पति-पत्नी का ही बखान
मुखरित था अवनी-अम्बर में ॥

सुनी अलाउद्दीन राहु ने
चन्द्रमुखी की तरुणाई ।
उसे विभव का लालच देकर,
की ग्रसने की निठुराई ॥

जितने अत्याचार किये
उन सबका क्या वर्णन होगा !
सुनने पर वह करुण कहानी
विकल तुम्हारा मन होगा ॥

बोला वह पथिक पुजारी से,
पावन गाथा आरम्भ करो ।
चाहे जो हो पर दम्पति का
मेरे अन्तर में त्याग भरो ॥

दलबल लेकर खिलजी ने क्या
गढ़ पर ललकार चढ़ाई की ?
क्या रावल के नरसिंहों से
रानी के लिए लड़ाई की ?

उस संगर का आख्यान कहो,
तुम कहो कहानी रानी की ।
समझा-समझा इतिहास कहो,
तुम कहो कथा अभिमानी की ।

जप-जप माला निर्भय वर्णन
जौहर का करने लगा यती ।
आख्यान-सुधा अधिकारी के
अन्तर में भरने लगा यती ॥

दूसरी चिनगारी

माधव-विद्यालय, काशी

आषाढ़ कृष्णाष्टमी १९९७

निशि चली जा रही थी काली,
प्राची में फैली थी लाली।
विहगों के कलरव करने से
थी गूँज रही डाली-डाली॥

सरसीरुह ने लोचन खोले,
धीरे धीरे तरु-दल डोले
फेरी दे देकर फूलों पर,
गुन-गुन गुन-गुन भौंरे बोले॥

सहसा घूँघट कर दूर हँसी
सोने की हँसी उषा रानी।
मिल-मिल लहरों के नर्तन से
चञ्चल सरिता सर का पानी॥

मारुत ने मुँह से फूँक दिया,
बुझ गये दीप नभ-तारों के।
कुसुमित कलियों से हँसने को,
मन ललचे मधुप-कुमारों के॥

रवि ने वातायन से झाँका,
धीरे से रथ अपना हाँका।
तम के परदों को फेंक सजग
जग ने किरणों से तन ढाँका॥

दिनकर-कर से चमचम बिखरे,
भैरवतम हास कटारों के।
चमके कुन्तल-भाले-बरछे,
दमके पानी तलवारों के॥

फैली न अभी थी प्रात-ज्योति,
आँखें न खुली थीं मानव को।
तब तक अनीकिनी आ धमकी,
उस रूप-लालची दानव की॥

क्षण खनी जा रही थी अवनी
घोड़ों की टप-टप टापों से।
क्षण दबी जा रही थी अवनी
रण - मत्त मतङ्ग - कलापों से॥

भीषण तोपों के आरव से
परदे फटते थे कानों के।
सुन - सुन मारू बाजों के रव
तनते थे वक्ष जवानों के॥

जग काँप रहा था बार - बार
अरि के निर्दय हथियारों से।
थल हाँफ रहा था बार-बार
हय - गज - गर्जन हुङ्कारों से

भू भगी जा रही थी नभ पर,
भय से वैरी - तलवारों के।
नभ छिपा जा रहा था रज में,
डर से अरि - क्रूर - कटारों के॥

कोलाहल हुँकृति बार - बार
आयो वीरों के कानों में।
बापा रावल की तलवारें
बन्दी रह सकीं न म्यानों में॥

घुड़सारों से घोड़े निकले,
हथसारों से हाथी निकले।
प्राणों पर खेल कृपाण लिये
गढ़ से सैनिक साथी निकले॥

बल अरि का ले काले कुन्तल
विकराल ढाल ढाले निकले।
वैरी-वर छीने बरछी ने,
वैरी-भा ले भाले निकले॥

हय पाँख लगाकर उड़ा दिये
नभ पर सामन्त सवारों ने।
जंगी गज बढ़ा दिए आगे
अंकुश के कठिन प्रहारों ने॥

फिर कोलाहल के बीच तुरत
खुल गया क़िले का सिंहद्वार।
हुँ हुँ कर निकल पड़े योधा,
धाये ले ले कुन्तल-कटार।

बोले जय हर हर व्याली की,
बोले जय काल कपाली की।
बोले जय गढ़ की काली की,
बोले जय खप्परवाली की॥

खर करवालों की जय बोले,
दुर्जय ढालों की जय बोले।
खंजर-फालों की जय बोले,
बरछे भालों की जय बोले॥

बज उठी भयङ्कर रण-भेरी,
सावन-घन-से धौंसे गाजे।
बाजे तड़-तड़ रण के डङ्के,
घन-घनन-घनन मारू बाजे॥

पलकों में बलती चिनगारी,
कर में नङ्गी करवाल लिये।
वैरी सेना पर टूट पड़े,
हर-ताण्डव के स्वर-ताल लिये॥

भैरव वन में दावानल-सम,
खग-दल में बर्बर-बाज-सदृश,
अरि-कठिन-व्यूह में घुसे वीर,
मृग-राजी में मृगराज-सदृश॥

आँखों से आग बरसती थी,
थीं भौंहें तनी कमानों-सी।
साँसों में गति आँधी की थी,
चितवन थी प्रखर कृपानों-सी॥

तलवार गिरी वैरी-शिर पर,
धड़ से शिर गिरा अलग जाकर।
गिर पड़ा वहीं धड़, असि का जब
भिन गया गरल रग-रग जाकर॥

गज से घोड़े पर कूद पड़ा,
कोई बरछे की नोक तान।
कटि टूट गयी, काठी टूटी,
पड़ गया वहीं घोड़ा उतान॥

गज-दल के गिर हौदे टूटे,
हय-दल के भी मस्तक फूटे।
बरछों ने गोभ दिये, छर छर
शोणित के फौवारे छूटे॥

लड़ते सवार पर लहराकर
खर-असि का लक्ष्य अचूक हुआ।
कट गया सवार गिरा भू पर,
घोड़ा गिरकर दो टूक हुआ॥

क्षण हाथी से हाथी का रण,
क्षण घोड़ों से घोड़ों का रण।
हथियार हाथ से छूट गिरे,
क्षण कोड़ों से कोड़ों का रण॥

क्षणभर ललकारों का संगर,
क्षणभर किलकारों का संगर।
क्षणभर हुङ्कारों का संगर,
क्षणभर हथियारों का संगर॥

कटि कटकर बही, कटार बही,
खर-शोणित में तलवार बही।
घुस गये कलेजों में खंजर
अविराम रक्त की धार बही॥

सुन नाद जुझारू के भैरव,
थी काँप रही अवनी थर-थर।
घावों से निर्झर के समान
बहता था गरम रुधिर झर-झर॥

बरछों की चोट लगी शिर पर,
तलवार हाथ से छूट पड़ी।
हो गये लाल पट भीग भीग,
शोणित की धारा फूट पड़ी॥

रावल-दल का यह हाल देख
वैरी-दल संगर छोड़ भगा।
हाथों के खंजर फेंक-फेंक
खिलजी से नाता तोड़ भगा॥

सेनप के डर से रुके वीर,
पर काँप रहे थे बार-बार।
डट गये तान संगीन तुरत,
पर हाँफ रहे थे वे अपार॥

खूँखार भेड़ियों के समान
भट अरि-भेड़ों पर टूट पड़े।
अवसर न दिया असि लेने का
शत-शत विद्युत् से छूट पड़े॥

लग गये काटने वैरी-शिर,
अपनी तीखी तलवारों से
लग गये पाटने युद्धस्थल,
बरछों से, कुन्त-कटारों से॥

अरि-हृदय-रक्त का खप्पर पी
थी गरज रही क्षण-क्षण काली।
दाढ़ों में दबा-दबाकर तन
वह घूम रही थी मतवाली॥

चुपचाप किसी ने भोंक दिया,
उर-आरपार कर गया छुरा।
झटके से उसे निकाल लिया,
अरि-शोणित से भर गया छुरा॥

हय-शिर उतार, गज-दल विदार,
अरि-तन दो दो टुकड़े करती।
तलवार चिता-सी बलती थी,
थी रक्त-महासागर तरती॥

रुख उधर किया, मैदान साफ।
रुख इधर किया, मैदान साफ।
मेवाड़-देश के वीरों ने
रुख जिधर किया, मैदान साफ॥

वैरी-सेना ने जान लिया,
रण में बच सकते प्राण न अब।
संगर के बीच खड़ा क्षण भर,
रहने देगा मेवाड़ न अब॥

भय से सेनानी भग निकले,
घोड़े भागे, हाथी भागे।
पैदल सबसे पहले भागे,
खिलजी के सब साथी भागे॥

तन में शोणित, मुख में कालिख,
खिलजी हाथी पर चढ़ भागा।
चित्तौड़ विरसू गढ़ से लड़,
मानो दिल्ली का गढ़ भागा॥

ललकार किया पीछा अरि का,
फिर खड़े हो गये धीर-वीर।
क्षण-क्षण गरजे क्षण-क्षण तरजे,
रव उठता मारुत चीर-चीर॥

कर कर झण्डे का अभिवादन
नर-नाहर गढ़ की ओर चले।
अपने शरीर के घावों पर
कर-कर आँखों की कोर चले॥

अन्तर में जय-उल्लास लिये
गढ़ के भीतर आ गये वीर।
माला पहनाने को उनक
हो रही युवतियाँ थीं अधीर॥

मङ्गल के गीत मधुर गाकर,
सामोद पिन्हाये विजय-हार।
चन्दन-अक्षत से पूजा की,
की पुलक आरती बार-बार॥

सब देख रहे थे वीरों को
आँखों में भर-भर प्रेम-नीर।
अब सूख रहे थे स्वेद-बिन्दु,
पङ्खा झलता सन्ध्या-समीर॥

पश्चिम की ओर दिवाकर भी
धीरे धीरे रथ हाँक रहा।
घावों की ओर प्रतीची के
वातायन से था झाँक रहा॥

नभ पर आकर रजनीपति भी
यह दृश्य देखता था अधीर।
ओसों के मिस वह-वह जाते,
तरु-तरु-पत्तों पर नयन-नीर॥

पथिक, भगा दिल्ली वैरी, पर
काम-पिपासा बनी रही।
प्रेम-भिखारी था, पर उसकी
रावल पर भ्रू तनी रही॥

पथिक, पद्मिनी-रूप-ज्वाल में
जलता था वह मतवाला।
उसे भुलाने को कामी वह
पीता भर-भर मधु-प्याला॥

कभी स्वप्न में हँस पड़ता था
कभी स्वप्न में गाता था।
कभी चौंककर उठ जाता था,
रो-रो अश्रु बहाता था॥

हँसकर बोला पथिक व्रती से,
क्या फिर इसके बाद हुआ?
अपनी पहली असफलता पर
क्या उसको उन्माद हुआ?

यदि सचमुच उन्माद हुआ तो
कहो कथा संक्षेप न हो।
नग्न चित्र हो, तथ्य सरल हो,
साधु-भाव का लेप न हो॥

हँसा पुजारी, हँसते ही,
उन्मादी का उन्माद कहा।
सुन्दरियों की कही कहानी,
खिलजी - चर - संवाद कहा॥

तीसरी चिनगारी

माधव-विद्यालय, काशी

पितृविसर्जन १९९७

शीशमहल की दीवालों पर
शोभित नंगी तसवीरें।
चित्रकार ने लिखीं वेगमों
की वहुरंगी तसवीरें॥

घूमीं परियाँ आँगन में,
प्रतिबिम्ब दिवालों में घूमे।
झूमीं सुन्दरियाँ मधु पी,
प्रतिबिम्ब दिवालों में झूमे॥

देह-सुरभि, फैली गज-गति में
छूकर छोर कुलाबों के।
मधुमाते चलते फिरते हों,
मानों फूल गुलाबों के॥

छमछम दो डग चलीं, नूपुरों
की ध्वनि महलों में गूँजी।
बोलीं मधुरव से, नखरे से,
कोयल डालों पर कूजी॥

उर पर दो दो रति-प्रतिमाएँ
तिरछी चितवन से जीतीं।
उनसे पूछो, उन्हें देखने में
कितनी रातें बीतीं॥

कटि मृणाल-सी ललित लचीली,
नाभी की वह गहराई।
त्रिबली पर अञ्जन-रेखा-सी,
रोम-लता-छवि लहराई॥

भरी जवानी में तन की क्या
पूछ रहे हो सुघराई।
पथिक, थकित थी उनके तन की
सुघराई पर सुघराई॥

साक़ी ने ली कनक-सुराही,
कमरे में महकी हाला।
भीनी सुरभि उठी मदिरा की
बना मधुप-मन मतवाला॥

मह-मह सकल दिशाएँ महकीं
महके कण दीवालों के।
सुरा-प्रतीक्षा में चेतन क्या,
हिले अधर मधु-प्यालों के॥

हँसी बेगमों की आँखें,
मुख-भीतर रसनाएँ डोलीं।
गन्ध कबाबों की गमकी,
'मधु चलो पियें' सखियाँ बोलीं॥

बड़े नाज से झुकी सुराही,
कुल-कुल-कुल की ध्वनि छायी।
सोने-चाँदी के पात्रों में
लाल-लाल मदिरा आयी॥

एक घूँट, दो घूँट नहीं,
प्यालों पर प्याले टकराये।
और भरो मधु और पियो मधु
के रव महलों में छाये॥

मधु पी मत्त हुई सुन्दरियाँ,
आँखों में सुर्खी छायी।
वाणी पर अधिकार नहीं अब,
गति में चञ्चलता आयी॥

दो सखियों का वक्ष-मिलन,
मन-मिलन, पुलक-सिहरन-कम्पन।
दो प्राणों के मधु-मिलाप से
अलस नयन, उर की धड़कन॥

खुली अधखुली आँखों में
उर-दान वासना का नर्त्तन।
एक-दूसरे को नर समझा,
सलज नयन, अर्पित तन-मन॥

डगमग-डगमग पैर पड़े,
हाथों से मधु ढाले छूटे।
गिरे संगमरमर के गच पर,
नीलम के प्याले फूटे॥

गिरे वक्ष से वसन रेशमी,
गुँथे केश के फूल गिरे।
मस्त वेगमों के कन्धों से
धीरे सरक दुकूल गिरे।

मिल-मिल नाच उठीं सुन्दरियाँ,
हार मोतियों के टूटे।
तसवीरों के तरुणों ने
अनिमेष दृगों के फल लूटे॥

माणिक की चौकी से भू पर,
मधु के पात्र गिरे झन-झन।
बिखरे कञ्चन के गुलदस्ते,
गिरे धरा पर मणि-कङ्कन॥

मदिरा गिरो बही अवनी पर,
हँसी युवतियाँ मतवाली।
कमरे के गिर शीशे टूटे,
बजी युवतियों की ताली॥

नीलम-मणि के निर्मल गच पर
गिरी सुराही चूर हुई।
कलकल से मूर्छित खिलजी की
कुछ कुछ मूर्च्छा दूर हुई॥

हँसीं, गा उठीं वेणु बजे,
स्वर निकले मधुर सितारों से।
राग-रागिनी थिरकीं, मुखरित
वीणा के मृदु तारों से॥

परियों के मुख से स्वर-लहरी
निकली मधुर-मधुर ताजी।
सारंगी के ताल-ताल पर
छम-छम-छम पायल बाजी॥

एक साथ गा उठीं युवतियाँ,
मूर्छित के खुल गये नयन।
कर्कश स्वर के तारतम्य से
उठा त्याग कर राजशयन॥

बोला कहाँ मधुर मदिरा है?
कहाँ घूँट भर पानी है?
कहाँ पद्मिनी, कहाँ पद्मिनी,
कहाँ पद्मिनी रानी है?

हाव-भाव से चलीं युवतियाँ
सुन उन्मादी की बोली।
राग-रागिनी रुकी, रुका स्वर,
बन्दी हुई मधु की होली॥

आकर उसे रिझाया हिलमिल,
सुरा-पात्र दे दे खेला।
हाथों में उसके हाथों की
अंगुलियों को ले खेला॥

नयन-कोर से क्षण देखा,
क्षण होठों पर ही मुसकायीं।
जिधर अङ्ग हिल गया उधर ही,
परियों की आँखें धायीं॥

उन्मादी के खुले वक्ष पर
कर रख कोई अलसाई।
तोड़-तोड़कर अङ्ग हाव से
रह-रहकर ली जमुहाई॥

आलिङ्गन के लिए मनोहर,
मृदुल भुजाएँ फैलाईं।
खिलजी की गोदी में गिर-गिर,
आँख मूँद, ली जमुहाई॥

उन्मादी ने करवट बदली,
छम-छम नखरे से घूमीं।
उसकी पलकों को चूमा, मधु-
मस्ती में झुक-झुक झूमीं॥

पर इनका कुछ असर न देखा,
तुरत तरुणियाँ मुरझायीं,
अरुण कपोलों पर विषाद की
रेखा झलकी, कुँभलायीं॥

अपनी कजरारी आँखों पर,
अपने गोल कपोलों पर,
अरुण अधर पर, नाहर-कटि पर,
सुधाभरे मधु बोलों पर,

अपने तन के रूप-रंग पर,
अपने तन के पानी पर,
अपने नाज़ों पर, नखरों पर,
अपनी चढ़ी जवानी पर,

घृणा हुई, गड़ गयीं लाज से,
मादक यौवन से ऊबीं।
भरी निराशा में सुन्दरियाँ
चिन्ता-सागर में डूबीं॥

बोल उठा उन्मादी फ़िर,
मुझको थोड़ा सा पानी दो।
कहाँ पद्मिनी, कहाँ पद्मिनी,
मुझे पद्मिनी रानी दो॥

बोलो तो, क्या तुम्हें चाहिए,
उसे ढूँढ़कर ला दूँ मैं।
रूपराशि के एक अंश पर हो
साम्राज्य लुटा दूँ मैं॥

कब अधरों के मधुरहास से
विकसित मेरा मन होगा ?
कब चरणों के नख-प्रकाश से
जगमग सिंहासन होगा ?

बरस रहा आँखों से पानी,
उर में धधक रही ज्वाला,
मुझ मुरदे पर ढुलका दो
अपनी छवि-मदिरा का प्याला॥

प्राणों की सहचरी पद्मिनी
वह देखो हँसती आयी।
ज्योति महल में फैल गयी,
लो बिखरी तन की सुघराई॥

आज छिपाकर तुम्हें रखूँगा,
अपने मणि के हारों में।
अपनी आँखों की पुतली में,
पुतली के लघु तारों में।।

हाय पद्मिनी कहाँ गयी ? फिर
क्यों मुझसे इतनी रूठी ?
अभी न मैंने उसे पिन्हा
पायी हीरे की अंगूठी।।

किस परदे में कहाँ छिपी
मेरे प्राणों की पहचानी।
हाय पद्मिनी, हाय पद्मिनी,
हाय पद्मिनी, महरानी।।

इतने में चित्तौड़ नगर से,
गुप्तदूत आ गया वहाँ।
उन्मादी ने आँखें खोलीं,
भगीं युवतियाँ जहाँ - तहाँ।।

बड़े प्रेम से खिलजी बोला,
कहो यहाँ कब आये हो ?
दूर देश चित्तौड़ नगर से
समाचार क्या लाये हो ?

मुझे विजय मिल सकती क्या
रावल - कुल के रणधीरों से ?
मुझे पद्मिनी मिल सकती क्या
सदा, अर्चिता वीरों से।।

सुनो पद्मिनी के बारे में
चुप न रहो कुछ कहा करो।
जबतक पास रहो उसकी ही
मधु - मधु बातें कहा करो।।

किया दूत ने नमस्कार फिर,
कहने को रसना डोली।
निकल पड़ी अधरों के पथ से
विनयभरी मधुमय बोली॥

जहाँ आप हैं वहीं विजय है,
जहाँ चरण सुख - स्वर्ग वहीं।
जहाँ आप हैं वहीं पद्मिनी,
जहाँ आप अपवर्ग वहीं॥

अभी आप इंगित कर दें,
नक्षत्र आप के घर आवें।
रखा पद्मिनी में क्या, नभ से
सूरज - चाँद उतर आवें॥

जिधर क्रोध से आप देख दें,
उधर प्रलय की ज्वाला हो।
जिधर प्रेम से आप देख दें,
उधर फूल हो, माला हो॥

महापुरुष चित्तौड़ नगर के
पास परी सी चित्तौड़ी।
सौत पद्मिनी को न चाहती,
वहीं मानिनी सी पौढ़ी॥

उसकी लेकर मदद आप
चाहें तो पहनें जय - माला।
उससे ही खिंच आ सकती है,
गढ़ की प्रभा रतन - बाला॥

और रानियाँ हो सकतीं
उसके पैरों की धूल नहीं
सच कहता उसके समान
हँसते उपवन के फूल नहीं॥

रोम-रोम लावण्य भरा है,
रोम-रोम माधुर्य भरा।
बोल-बोल में सुधा लहरती,
शब्द-शब्द चातुर्य भरा॥

हिम-माला है, पर ज्वाला भी,
लक्ष्मी है, पर काली भी।
दो डग चलना दुर्लभ, पर
अवसर पर रण-मतवाली भी॥

कानों से सुनकर आँखों से
देखा, जाना पहचाना।
रतन-रूप की दीप-शिखा का
समझें उसको परवाना॥

इससे पहले जाल प्रेम के
आप बिछावें बिछवावें।
इस पर मिले न तरुणी तब फिर,
रण के बाजे बजवावें॥

इस प्रयत्न से कठिन न उसका
विवश अंक में आ जाना।
शरद्-चाँदनी सी आकर
प्राणों में बिखर समा जाना॥

बड़े ध्यान से वचन सुने ये,
खिलजी ने अँगड़ाई ली।
बोला कहो सजे सेना अब,
भैरव सी जमुहाई ली॥

क्षण भर में ही बजे नगाड़े,
गरज उठे रण के बाजे।
निकल पड़ीं झनझन तलवारें,
सजे वीर हय-गज गाजे॥

उधर दुर्ग-सन्निधि अरि आया,
रूप-ज्वाल को रख प्राणों में।
रतन चला आखेट खेलने,
इधर भयद वन के झाड़ों में॥

मृग-दम्पति को मार विपिन में
रावल ने जो पुण्य कमाया।
वन देवी का तप्त शाप ले
खिलजी से उसका फल पाया॥

वीर पुजारी विपिन-कहानी
लगा सुनाने चिन्तित होकर।
सुनने लगा पथिक दम्पति की
करुण-सुधा से सिंचित होकर॥

बोला पथिक पुजारी से, क्यों
वनदेवी ने शाप दिया था।
क्यों कैसे अपराध हुआ क्या,
रावल को जो ताप दिया था॥

कहो न देर करो, अब मेरी
उत्कण्ठा बढ़ती जाती है।
सुनने को विस्मित गाथा वह
मेरी इच्छा अकुलाती है॥

●

चौथी चिनगारी

नारायण-मन्दिर विजयादशमी

द्रुम-ग्राम (आजमगढ़) १९९७

दोपहरी थी, ताप बढ़ा था,
पूर्वजन्म का पाप बढ़ा था।
जल-थल-नभ के सिर पर मानो,
दुर्वासा का शाप चढ़ा था॥

वृत्त-बिन्दु-सा भासमान था,
तप्त तवे सा आसमान था।
दोपहरी के प्रखर ताप में,
जलता जग दावा-समान था॥

स्वयं ताप से विकल भानु था,
किसी तरह किरणें जीती थीं।
उतर-उतरकर अम्बर-तल से
सर-सरिता में जल पीती थीं॥

ऊपर नभ से आग बरसती,
नीचे भू पर आग धधकती।
दिग्दिगन्त से आग निकलती,
लू-लपटों से आग भभकती॥

पङ्खों में खग बाल छिपाये,
छिपे अधमरे से खोतों में।
खोज-खोज जल हार गये, पर
मिला न सीपी भर सोतों में॥

बैठे मृग जल हेर कहीं पर,
तृषित हरिण तरु घेर कहीं पर।
जीभ निकाल चीड़-छाया में,
हाँफ रहे थे शेर कहीं पर॥

धूल-कणों से पाट रहे थे,
अम्बर-तल विकराल बवण्डर॥
तृषित पथिक के लिए बने थे,
ऊसर-पथ के काल बवण्डर॥

तपी रेह से भर देते थे,
जग की आँखें क्रुद्ध बवण्डर।
पथ में कहीं पड़े तरुवर तो
कर लेते थे युद्ध बवण्डर॥

मूर्च्छित मृगछौने, सुरही के
लैरू कुम्हला गये कहीं थे।
कहीं सूखते पेड़ पुराने,
सूख गये तरु नये कहीं थे॥

दिनकर-कर में आग लगी थी,
सरिता-सर में आग लगी थी।
जग में हाहाकार मचा था,
बाहर घर में आग लगी थी॥

दोपहरी में जब कि ताप से
सारा जग था दुःख झेलता।
अरावली के घोर विपिन में
एक वीर आखेट खेलता॥

स्वेद-बिन्दु उसके ललाट पर
मोती-कण से झलक रहे थे।
वाजि पसीने से तर था, तन
से जल के कण छलक रहे थे॥

गमन-वेग से काँप रहा था,
वाजि निरन्तर हाँफ रहा था।
पर सवार पीछे शिकार के
बारबार पथ नाप रहा था॥

आग-सदृश तपती उसकी असि,
गरमी से भी अधिक गरम थी।
चोट भयङ्कर करती, पर वह
किसलय से भी अधिक नरम थी।

लचकीली थी, लचक लचकर
नर-तन पर नर्त्तन करती थी।
चीर-चीरकर वीरपंक्ति वह
पद कर-तन-कर्त्तन करतो थी।

पीछे प्यासे मृग-दम्पति के
वही पड़ी तलवार दुधारी।
गिरती हय की टाप शिला पर
उड़-उड़ जाती थी चिनगारी॥

चपल चौकड़ी भर-भरकर वह
उड़ता कस्तूरी-मृग-जोड़ा।
रतनसिंह ने उसके पीछे
छोड़ दिया था अपना घोड़ा॥

कभी झाड़ियों में छिप जाते,
कभी लताओं के झुरमुट में,
कभी पहाड़ों की दरियों में,
कभी समा जाते खुर-पुट में॥

कभी शिखर पर कुलाँचते थे,
कभी रेंगते पथ महान पर।
कभी सामने ही व्याकुल से,
कभी उड़े तो आसमान पर॥

मृग-दम्पति पर रतन-लक्ष्य पर
इधर-उधर वन-जीव भागते।
शेर-तेंदुए-बाघ-रीछ सब
वन-वन विकल अतीव भागते॥

छिप दरारों में अजगर थे,
हाथी छिपे पहाड़ों में थे।
छिपे सरपतों में अरने थे,
हरिण कँटीले झाड़ों में थे।

पर सवार को ध्यान न कुछ भी,
औरों के छिपने भगने का।
केवल उसको ध्यान लक्ष्य पर
ठीक निशाने के लगने का।

भगते-भगते खड़े हो गये,
थकी मृगी, मृग थका बिचारा।
कम्पित-तन-मन, शिथिल अंग थे,
साँसों का रह गया सहारा॥

दोनों की आँखों से टप-टप
दो दो बिन्दु गिरे आँसू के।
सूख गये पर हाय वहीं पर,
सन-सन-सन बहने से लू के॥

दोनों ने रावल से माँगी,
मौन-मौन भिक्षा प्राणों की।
क्षणभर भी पूरी न हो सकी,
पर इच्छा उन म्रियमाणों की॥

एक हाथ मारा सवार ने,
दोनों दो दो टूक हो गये।
चीख-चीख वन की गोदी में,
धीरे-धीरे मूक हो गये॥

मृग - शोणित के फौवारों से,
मही वहाँ की लाल हो गयी।
हाय, क्रूर तलवार रतन की,
दो प्राणों की काल हो गयी॥

तुरत किसी ने कानों में यह,
धीरे से सन्देश सुनाया।
इतने श्रम के बाद अभागे,
जीवन का बस अन्त कमाया॥

यही नहीं, तेरे अघ से जब,
विपिन - मेदिनी डोल रही है;
व्याकुल सी तेरे कानों में,
वनदेवी जब बोल रही है;

तो हत्या यह क्या न करेगी,
राजपूत-बलिदान करेगी।
यह घर-घर ब्रह्माग्नि लगाकर,
सारा पुर वीरान करेगी॥

चिता पद्मिनी की धधकेगी,
सारा अग-जग काँप जायगा।
साथ जलेंगी वीर नारियाँ
महा प्रलय भव भाँप जायगा॥

विरह पद्मिनी का कानों से,
सुनकर हय पर रह न सका वह।
गिरा तुरत मूर्छित भूतल पर
विरह - वेदना सह न सका वह॥

कहीं म्यान, शमशीर कहीं पर
कहीं कुन्त, तो तीर कहीं पर।
बिखर गये सामान रतन के,
कहीं ताज, तूणीर कहीं पर॥

घोड़ा चारों ओर रतन के
चक्कर देकर लगा घूमने
सजल-नयन हय मूर्छित प्रभु को
सूँघ सूँघकर लगा चूमने ॥

विकल हींसता, पूँछ उठाकर
घूम रहा था सतत वृत्त में।
पड़ा मही पर रतन बिन्दु-सा,
आग लगी थी तुरग-चित्त में।

कभी मृगों की ओर दौड़ता,
कभी दौड़ता रतन - ओर था।
कभी कदम तो कभी चौकड़ी,
अश्व स्वेद से शराबोर था ॥

इतने ही में पीछा करते,
आ पहुँचे अरि - क्रूर-गुप्तचर।
चपला - सी चमकीं तलवारें,
भिड़े वाजि से शूर गुप्तचर ॥

हय था थका दौड़ने से, पर
सबको चकनाचूर कर दिया।
गुप्तचरों को क्षणभर में ही
भगने को मजबूर कर दिया ॥

खूँद-खूँदकर चट्टानों को
पर्वत की भी धूल उड़ा दी।
विजय-वात अरि-गुप्तचरों में
अपने ही अनुकूल उड़ा दी ॥

एक दूसरी टोली आयी,
बोल दिया धावा घोड़े पर।
पड़े अश्व-शोणित के छींटे
पर्वत के रोड़े-रोड़े पर ॥

मार डालने का घोड़े को
था उस वैरी-दल का दावा।
साफ-साफ बच जाता था, पर
घोड़ा काट-काटकर कावा॥

हाय गिरी तलवार किसी की,
घोड़े की अगली टाँगों पर।
खड़ा हो गया वीर तुरङ्गम
शक्ति लगा पिछली टाँगों पर॥

यह लो पिछली टाँगों से भी
उलझी अरि की क्रूर कटारी।
हा, तुरङ्ग के करुण-नाद से
काँप उठी वन की भू सारी॥

हय का काम तमाम अचानक,
पलक मारते वहीं हो गया।
कातर आँखों से स्वामी की
ओर देखता वहीं सो गया॥

उस घोड़े को मरे न जाने,
कितने दिन, वत्सर, युग बीते।
किन्तु आज भी उसी वाजि के
वीर-गान हम गाकर जीते॥

जो हो पथिक, कर्म का फल तो
जीव-जीव को मिलता ही है।
निरपराध-वध-महापाप से
विधि का आसन हिलता ही है॥

वीर सती ने जिस रावल को
अपनी फुलझड़ियों से बाँधा।
अरि के गुप्तचरों ने उसको
लोहे की कड़ियों से बाँधा॥

उधर पथिक, रवि ने लाली से
तुरत छिपा ली शोणित-लाली।
रजनी ने भी डाली उस पर
अन्धकार की चादर काली॥

दृश्य देखने को लालायित
जगमग - जगमग तारे आये।
देख न सके गगन से जब, तब
ओसों के मिस भू पर छाये॥

बोल उठा योगी से राही,
रावल का क्या हाल हुआ?
क्या अनमोल रतन को पाकर
खिलजी मालामाल हुआ?

अब आगे की कहो कहानी,
बैरी का दरबार कहो।
साथ रतन के उस उत्पाती
खिलजी का व्यवहार कहो॥

उठी विकल तुलसी की माला
फेर पुजारी बोल उठा।
खिलजी का निःसीम गर्व सुन
राही का मन डोल उठा॥

किन्तु कथा के बीच बोलने
का उसको साहस न हुआ।
खिलजी को उत्तर देता पर
गत - प्राणी पर वश न हुआ॥

●

पाँचवीं चिनगारी

विष्णु-मन्दिर, द्रुमग्राम (आजमगढ़) — दीपावली १९९७

अन्धकार था घोर धरा पर,
अभय घूमते चोर धरा पर।
चित्रित पङ्ख मिला पङ्खों से
सोये वन के मोर धरा पर॥

रोक पल्लवों का कम्पन, तरु
ऊँघ रहे थे खड़े-खड़े ही।
सैनिक अपने बिस्तर पर कुछ
सोच रहे थे पड़े-पड़े ही॥

जहाँ चाँद-सूरज उगते हैं,
ऊपर नभ की ओर अँधेरा।
जहाँ दीप मणियों के जलते,
यहाँ वहाँ सब ओर अँधेरा॥

अपनी आँखों से अपना ही
हाथ देखना दुर्लभ-सा था।
तम अनादि से ले अनन्त तक,
चारों ओर अगम नभ-सा था॥

गगन चाहता धरा देखना,
अगणित आँखों से तारों की।
तम के कारण देख न पाता,
पामरता अरि के चारों की॥

नीरवता छायी थी केवल,
भूँक रहे थे श्वान दूर पर।
मन्द-मन्द कोलाहल भी था,
और विजय के गान दूर पर॥

जंगल से आखेट खेलकर
रावल अब तक महल न आये।
दुर्गवासियों के मुख इससे
सान्ध्य-कमल-से थे मुरझाये॥

रावल-रतन-वियोग-व्यथा से
आग लगी रानी के तन में।
आत्मविसर्जन के सब साधन
रह-रह दौड़ रहे थे मन में॥

इधर क्रूर कामातुर खिलजी
बहक रहा था सरदारों में।
मोमबत्तियाँ जलतीं जगमग,
प्रतिबिम्बित हो हथियारों में॥

ललित झाड़-फानूस मनोहर,
लाल-हरे-पीले जलते थे।
जगह-जगह पर रंग-बिरंगे,
दीपक चमकीले जलते थे॥

मध्य प्रकाशित, तिमिर पड़ा था,
चारों ओर सजग घेरों में।
विविध रूप धर भानु छिपा था,
मानों खिलजी के डेरों में॥

सोने की चित्रित चौकी पर
एक ओर थी रखी सुराही।
घी का दीप इधर जलता था,
उधर जमात जमी थी शाही॥

उन डेरों के बीच बना था,
उन्नत एक मनोहर डेरा।
पहरेदार सतर्क खड़े थे,
रक्षा के हित डाले घेरा॥

उसी जगह माणिक-आसन पर
शीतलपाटी बिछी हुई थी।
ऊपर शीतलता छाई थी,
नीचे गुलगुल धुनी रुई थी॥

उस पर वह रेशम-पट डाले
बैठा था लेकर खंजर खर।
पीता था मदिरा अंगूरी,
सोने के प्यालों में भर-भर॥

एक ओर हीरक-थालों में
एला – केसर – पान – सुपारी।
एक ओर सरदारों से था
बातचीत करता अविचारी॥

बोला खिलजी, रूपवती वह
कल परसों तक मिल जायेगी।
नहीं मिली, तो रण-गर्जन से
सारी पृथ्वी हिल जायेगी॥

दोनों रक्षित रह न सकेंगे,
चाहे रक्षित प्राण रहेगा।
राजपूत - लालित - पालित या
चाहे यह मेवाड़ रहेगा॥

बोल उठे दरबारी, हाँ हाँ,
इसमें कुछ सन्देह नहीं है।
इच्छा पर है जब चाहें तब
रानी की मृदु देह यहीं है॥

किन्तु एक दरबारी बोला,
क्षत्रिय-रक्षित है रानी भी।
इतनी जल्दी तो न मिलेगी,
कोई नकचिपटी कानी भी॥

रवि से उसकी प्रभा छीनना,
दाँत क्रुद्ध नाहर के गिनना।
जितना कठिन असम्भव, उससे
अधिक असम्भव उसका मिलना॥

प्राण हथेली पर ले, अहि के
मुख से लप-लप जीभ निकालें।
कभी भूलकर पर साँपिन के
बिल में अपना हाथ न डालें॥

विधि से आधा राज बँटा लें,
मत्त सिंह की नोच सटा लें।
बार-बार पर मैं कहता हूँ,
उससे अपना चित्त हटा लें॥

साध्वी परम-पुनीता है वह,
रामचन्द्र की सीता है वह।
अधिक आपसे और कहूँ क्या,
रामायण है गीता है वह॥

कूद आग में जल जायेगी'
गिरि से गिरकर मर जायेगी।
मेरा कहना मान लीजिये,
पर न हाथ में वह आयेगी॥

नभ-तारों को ला सकते हैं,
अंगारों को खा सकते हैं।
गिरह बाँध लें, मैं कहता हूँ,
लेकिन उसे न पा सकते हैं॥

सुनते ही यह, अधिक क्रोध से
दोनों आँखें लाल हो गईं।
तुरत अलाउद्दीन क्रूर की
भौंहें तनकर काल हो गईं॥

प्रलय-मेघ सा गरज उठा वह,
राजशिविर को घर समझा है ?
बोल उठा जो वैरी सा तू,
क्या मुझको कायर समझा है ?

चाहूँ तो मैं अभी मृत्यु के
लिए मृत्यु-सन्देश सुना दूँ।
महाकाल के लिए, कहो तो,
फाँसी का आदेश सुना दूँ॥

अभी हवा को भी दौड़ाकर
धर लूँ, धरकर मार गिराऊँ।
पर्वत - सिन्धु - सहित पृथ्वी को
अपने कर पर आज उठाऊँ॥

अभी आग की देह जला दूँ,
पानी में भी आग लगा दूँ।
अभी चाँद सूरज को नभ से
क्षण में तोड़ यहाँ पर ला दूँ॥

महासिन्धु की बेला तोड़ूँ,
भू पर पानी-पानी कर दूँ।
जल में, थल में, नभ में अपनी
अभी कहो मनमानी कर दूँ॥

बढ़ी हुई सावन भादों की
गंगा की भी धार फेर दूँ।
अभी कहो बैठे ही बैठे
सारा यह संसार घेर दूँ॥

अभी हिमालय विन्ध्याचल को
चूर-चूरकर धूल बना दूँ।
कहो सुई को रुई बना दूँ,
पत्थर को भी फूल बना दूँ॥

दिनकर-कर से हिम बरसाऊँ।
हिमकर से अंगार चुवाऊँ।
अभी कहो तो एक फूँक से
बड़वानल की आग बुझाऊँ॥

नभ को मैं पाताल बना दूँ,
भू को मैं आकाश बना दूँ।
अभी कहो तो नाच नचाकर
सारे जग को दास बना दूँ॥

क्रोध देखकर खिलजी का, सब
काँप उठे सैनिक-दरबारी।
लाल-लाल उसकी आँखों से
निकल रही थी खर चिनगारी॥

एक गुप्तचर काँप रहा था,
थर-थर खड़ा-खड़ा कोने में।
इधर अलाउद्दीन क्रूर को
देर न थी पागल होने में॥

मृगया-निरत रतन को वन से
वही पकड़कर ले आया था।
पर खिलजी का रूप देखकर
अपराधी सा घबड़ाया था॥

उसे काँपते हुए अचानक
देखा उसने तनिक घूमकर।
तुरत क्रोध कुछ शान्त हो गया,
बोल उठा सानन्द झूमकर॥

शिर पर दुष्कर कार्य-भार है,
बोलो फिर क्या समाचर है।
इसकी बातें क्या सुनते हो,
यह पाजी बिल्कुल गँवार है॥

कहीं शिकारी मिला तुम्हें वह,
जिसके पीछे पड़े हुये थे।
उसे पकड़ने को तो उस दिन
बड़े गर्व से खड़े हुए थे॥

गुप्तदूत ने उसके आगे
साहस कर अपना मुँह खोला।
पुरस्कार की आशा से शिर
झुका-झुकाकर झुक-झुक बोला॥

सफल आपका दास आज है,
अतिशय हर्षित जन-समाज है,
फँसा आप पिंजड़े में आकर,
आसानी से रतन-बाज है॥

पैरों में हैं बँधी बेड़ियाँ
हथकड़ियों से हाथ बँधे हैं।
शिविर-द्वार पर चर-बन्धन में
आज पद्मिनी-नाथ बँधे हैं॥

अब तो रानी के मिलने में
रंचमात्र सन्देह नहीं है।
आधी देह बची है उसकी,
बाकी आधी देह यहीं है॥

गुप्तदूत की बातें सुनकर
बोला, उठो गले लग जाओ।
कहता था, वह नहीं मिलेगी,
इस बुद्धू को भी समझाओ॥

यह लो, ऊँगली से निकालकर
फेंकी उसकी ओर अँगूठी।
दिये कनक-हीरक रेशम-पट,
टोपी दी नव परम अनूठी॥

आओ एक रतन लाये तो
रतन ढेर के ढेर उठाओ।
मणिमाला नवलखा हार लो,
मोती-हीरों से भर जाओ॥

कहाँ पद्मिनी का प्यारा पति,
कारागृह में उसे डाल दो।
एक पत्र राणा को लिखकर
तुरत सूचना यह निकाल दो—

तभी मुक्त होगा रावल, जब
आ जायेगी स्वयं पद्मिनी;
सिंहासन पर शोभित होगी,
खिलजी की बन राज-सद्मिनी॥

पथिक बोला, पोंछकर आँखें सजल,
आँसुओं के तरल पानी बह चलो।
और योगी से कहा, छू पद-कमल,
तुम रुको न कहीं, कहानी कह चलो॥

जप पुजारी ने किया क्षण मौन हो,
चल पड़ी दरबार की आगे कथा।
स्वप्न राणा का कहा, आख्यान में
शत्रु की भी सूचना की थी व्यथा।

छठी चिनगारी

माधव-विद्यालय, काशी

कार्त्तिकी, १९९७

आन पर जो मौत से मैदान लें
गोलियों के लक्ष्य पर उर तान लें।
वीरसू चित्तौड़ गढ़ के वक्ष पर
जुट गये वे शत्रु के जो प्राण लें॥

म्यान में तलवार, मूँछें थीं खड़ी,
दाढ़ियों के भाग दो ऐंठे हुए।
ज्योति आँखों में कटारी कमर में,
इस तरह सब वीर थे बैठे हुए॥

फूल जिनके महकते महमह मधुर
सुघर गुलदस्ते रखे थे लाल के,
मणिरतन की ज्योति भी क्या ज्योति थी,
विहस मिल-मिल रंग में करवाल के॥

चित्र वीरों के लटकते थे कहीं,
वीर प्रतिबिम्बित कहीं तलवार में।
युद्ध की चित्रावली दीवाल पर,
वीरता थी खेलती दरबार में॥

बरछियों की तीव्र नोकों पर कहीं
शत्रुओं के शीश लटकाये गये।
वैरियों के हृदय में भाले घुसा
सामने महिपाल के लाये गये॥

कलित कोनों में रखी थीं मूर्त्तियाँ,
जो बनी थीं लाल-मूँगों की अमर।
रौद्र उनके वदन पर था राजता,
हाथ में तलवार चाँदी की प्रखर॥

खिल रहे थे नील परदे द्वार पर,
मोतियों की झालरों से बन सुघर।
डाल पर गुलचाँदनी के फूल हों,
या अमित तारों भरे निशि के प्रहर॥

कमर में तलवार कर में दण्ड ले
सन्तरी प्रतिद्वार पर दो दो खड़े।
देख उनको भीति भी थी काँपती,
वस्त्र उनके थे विमल हीरा जड़े॥

संगमरमर के मनोहर मंच पर
कनक-निर्मित एक सिंहासन रहा।
दमकते पुखराज-नग जो थे जड़े,
निजप्रभा से था प्रभाकर बन रहा॥

मृदुल उसपर एक आसन था बिछा,
मणिरतन के चमचमाते तार थे।
वीर राणा थे खड़े उस पर अभय,
लोचनों से चू रहे अंगार थे॥

स्वप्न राणा कह रहे थे रात का,
लोग सुनते जा रहे थे ध्यान से।
एक नीरवता वहाँ थी छा रही,
मलिन थे सब राज-सुत-बलिदान से

सुन रहे थे स्वप्न की बातें सजल,
आग आँखों में कभी, पानी कभी।
शान्त सब बैठे हुए थे, मौन थे,
क्रान्ति मन में और कुर्बानी कभी॥

क्या कहूँ मैं नींद में था या जगा,
निविड़ तम था रात आधी थी गई।
एक विस्मय वेदना के साथ है,
नियति से गढ़ की परीक्षा ली गई॥

राजपूतो, इष्टदेवी दुर्ग को
भूख की ज्वाला लिये आयी रही।
मलिन थी, मुख मलिन था, पट मलिन थे,
मलिनता ही एक क्षण छायी रही॥

देख पहले तो मुझे कुछ भय हुआ,
प्रश्न फिर मैंने किया तुम कौन हो,
क्यों मलिन हो, क्या तुम्हें दुख है कहो,
खोलकर मुख बोल दो, क्यों मौन हो॥

शीश के बिखरे हुए हैं केश क्यों,
क्यों न मुख पर खेलता मृदु हास है।
निकलती है ज्योति आँखों से न क्यों,
क्यों न तन पर विहँसता मधुमास है॥

यह उदासी, वेदना यह किस लिए,
आँसुओं से किस लिये आँखें भरीं।
इस जवानी में बुढ़ौती किस लिए,
किस लिए तुम स्वामिनी से किंकरी॥

कौन है जिसने सताया है तुम्हें,
किस भवन से तुम निकाली हो गयी।
प्राण से भी प्रिय, हृदय से भी विमल,
वस्तु कोई क्या कहीं पर खो गयी?

रतन के रहते सतावे दीन को,
कौन ऐसा मेदिनी में मर्द है।
नाम उसका दो बता निर्भय रहो,
और कह दो कौन-सा दुख दर्द है॥

तुम रमा हो, हरि - विरह से पीड़िता,
या शिवा हो, शम्भु ने है की हँसी।
विधि - तिरस्कृत शारदा हो या शची,
शयन-गृह में तुम अचानक आ फँसी॥

प्रश्न पूरे भी न मेरे थे हुए,
पेट दिखला फूटकर रोने लगी।
आँसुओं में वाढ़ आई वेग से,
वेदना से वह विकल होने लगी॥

बार - बार बिसूरती थी विलपती,
कह रही थी व्यग्र हूँ मैं हूँ विकल।
हूँ अधिष्ठात्री तुम्हारे दुर्ग की,
चैन से अब रह न जाता एक पल॥

क्या कहूँ मैं भूख से बेचैन हूँ,
मर मिटूँ क्या प्यास से मेवाड़ में।
क्या यही है अर्थ पृथ्वीपाल का,
अब न वल है शक्ति है कुछ प्राण में॥

हूँ क्षुधा से व्यग्र, अन्न न चाहिए,
हूँ तृषाकुल, पर न पानी चाहिए।
भूख नर-तन की रुधिर की प्यास है,
भूप! मुझको नव जवानी चाहिए॥

एक सुत को छोड़ जितने पुत्र हैं,
मैं उन्हीं का रुधिर पीना चाहती।
आज कण्ठों का उन्हीं के हार ले
दुर्ग में सानन्द जीना चाहती॥

यदि न ऐसा हो सका तो राज्य यह
वैरियों के हाथ में ही जान लो।
बन्द आँखें खोल कर देखो मुझे,
दुर्गदेवी को तनिक पहचान लो॥

शयन-गृह में एक ज्योति चमक उठी,
नयन मेरे चौंधियाकर मुँद गये।
छिप गयी वह, पर हृदय-पाषाण पर
देविका के अमिट अक्षर खुद गये ॥

मौन रहकर दी वहाँ स्वीकृति सहम,
वँध गयी हिचकी, उठा, रोने लगा।
घन-घटाएँ बन गयीं आँखें सजल,
आँसुओं में चेतना खोने लगा ॥

विपति एकाकी न आती है कभी,
साथ लाती है दुखों का एक दल।
एक कटु संदेश अरि का आ गया,
छिड़कता व्रण पर नमक वैरी सबल ॥

रतन कल आखेट को जो थे गये,
महल में अब तक न आये लौट कर।
कौन जाने किस बिपति में हैं फँसे,
दे रहा खिलजी दुखद सन्देश पर ॥

क्रूर खिलजी ने बड़े अभिमान से
सूचना दी, 'रतन कारागार में'।
लिख रहा, 'पूरी न होगी चाह तो
रह न सकता रतन-तन संसार में ॥

पद्मिनी का ब्याह मुझसे दो करा,
हीरकों से कोष लो मुझसे भरा।
है यही इच्छा इसे पूरी करो,
कनक लो, मणिरतन लो, धन लो, धरा ॥

पद्मिनी के साथ हूँगा मैं जभी,
मुक्त होगा रतन कारा से तभी।
यदि मिलेगी पद्मिनी रानी न तो,
फूँक दूँगा, नाश कर दूँगा सभी ॥

यदि न मेरी बात मानी जायगी,
यदि न मेरे साथ रानी जायगी।
राजपूतो, तो समझ लो, जान लो,
धूल में मिल राजधानी जायगी॥

कसम खाता हूँ खुदा की मान लो,
तेज तलवारें तड़पतीं म्यान में।
लाल कर देंगी महीतल रक्त से,
हो न सकती देर जन-बलिदान में'॥

स्वप्न राणा के सुने, फिर शत्रु की
सूचना सुनकर सभी चुप हो गये।
दुख-घृणा से भर गये उनके हृदय,
अर्ध-मूर्च्छित-से अचानक हो गये॥

मूर्च्छना थी एक क्षण, फिर क्रोध से
नयन से निकलीं प्रखर चिनगारियाँ।
एक स्वर में कह उठे सरदार सब,
हो गयीं क्या व्यर्थ वीर-कटारियाँ ?

नीच-उर में नीचता का वास है,
कह रहा उसको करेगा, जान लो।
उचित अनुचित का न उसको ज्ञान है,
सूचना से शत्रु को पहचान लो॥

इसलिए गढ़ को अभी कटिबद्ध हो,
रण-तयारी तुरत करनी चाहिए।
वीर तलवारें उठें मैदान में,
अरि-रुधिर से भूमि भरनी चाहिए॥

रण विचार न व्यर्थ करना चाहिए,
हाथ में हथियार धरना चाहिए।
सिंह - सम रण में उतरना चाहिए,
मारना या स्वयं मरना चाहिए॥

सिंह की सन्तान का यह अर्थ है,
देश-गौरव-मान के हित प्राण दें।
मर मिटें, जब प्राण सबके उड़ चलें,
तब कहीं निर्जीव यह मेवाड़ दें।।

एक योधा ने कहा, 'सब सत्य है,
किन्तु क्षण भर सोच लेना चाहिए।
फिर नियत कर तिथि भयंकर युद्ध की,
चाल अरि के नोच लेना चाहिए।।

काम इतना बढ़ गया उस श्वान का,
सिंहनी से व्याह करना चाहता।
राजपूतों के लिए यह मौत है,
वंश का मुँह स्याह करना चाहता'।।

बात कुछ ने मान ली, कुछ मौन थे,
फिर लगी होने बहस दरबार में।
एक राय न हो रहे थे वीर सब,
इसलिए थी देर रण-हुङ्कार में।।

बोला वह पथिक यता से,
कुछ देर हो गयो होगी,
रानी की रतन-विरह से
सुध सकल खो गयी होगी।।

यदि मुक्त हुआ रावल तो,
आख्यान बताना होगा।
माला जप-जप देरी कर,
मुझको न सताना होगा।।

बोला वह, देर न होगी,
जप से क्यों घबड़ाते हो।
आस्तिक हो, नास्तिक से क्यों
माला से दुख पाते हो।।

यदि ऐसीं बात करोगे
तो कथा न कह सकता हूँ।
क्षणभर भी इस आसन पर
जप-हीन न रह सकता हूँ॥

यह कह उठ गया पुजारी,
जलपूत कमण्डलु लेकर।
भयभीत पथिक ने रोका,
शिर चलित पदों पर देकर॥

की क्षमा-याचना उसने
गिर-गिर रो-रो चरणों पर।
चल पड़ी कथा बलिहारी,
दोनों के अश्रु-कणों पर॥

सातवीं चिनगारी

माधव-विद्यालय,
काशी

सौम्यसितेषु
१९९७

नीरव थी रात, धरा पर
विधु सुधा उँडेल रहा था।
नभ के आँगन में हँस-हँस
तारों से खेल रहा था॥

शशि की मुसकान-प्रभा से
गिरि पर उजियाली छायी।
कण चमक रहे हीरों-से,
रजनी थी दूध-नहाई॥

वह उतर गगन से आया,
सरिता-सरिता सर-सर में।
चाँदी-सी चमकीं लहरें,
वह झूला लहर-लहर में॥

शीतल प्रकाश छाया था,
उपवन पर, आरामों पर।
शशि-किरणें खेल रही थीं,
मेवाड़-धवल-धामों पर॥

कुमुदों के घर रंगरलियाँ,
पर दुख कमलों के घर क्यों।
दो आँख जगत पर करता,
यह अन्यायी शशधर क्यों॥

पत्तों से छन-छन किरणें
सोयीं तम के घेरों में।
चू गयी चाँदनी नीचे
क्या तरु-तम के डेरों में॥

जल-बीच चाँदनी में ये
कितने शोभित हैं बजरे।
वन-बीच किसलिए बनते
ये रंग-बिरंगे गजरे॥

गुथ दिये किसी ने मोती
तम की उलझी अलकों में।
या आँसू के कण अटके,
छाया की मृदु पलकों में॥

उसके शीतल कर छू-छू
हँसती सुमनों की माला।
अनिमेष चकोर-चकोरी,
पर मलिन पद्मिनी बाला॥

अपलक मयङ्क की शोभा
वह देख रही थी रानी।
आकुल छवि देख सती की
हिमकर था पानी-पानी॥

दोनों मयंक दोनों की
छवि का कर मोल रहे थे।
विधि-ललित-कला दोनों की
दोनों ही तोल रहे थे॥

केवल इतना अन्तर था,
उसकी छवि तारों में थी।
यह राजमहल के भीतर,
जलते अंगारों में थी॥

उससे पीयूष बरसता,
इससे आँसू का पानी।
वह नभ पर खेल रहा था,
यह भू पर व्याकुल प्राणी॥

निशिदिन घुलती थी रानी,
दुख-चिन्ता से आकुल थी।
वह मन की मौन-व्यथा से
अतिशय अधीर व्याकुल थी॥

हा विधना, हा क्यों मैंने
इतनी सुन्दरता पायी!
हा मेरे लिए बनी है,
सुन्दरता ही दुखदायी॥

सीता सुन्दर थीं, तो थीं
बन्दी रावण के घर में।
पर यहाँ नियम उलटा है,
पति ही बैरी के कर में॥

उन पर यदि राम-दया थी,
तो क्या वह राम न मेरा।
वह पति को मुक्त करेगा,
वह सबका चतुर चितेरा॥

दमयन्ती भी सुन्दर थीं,
सुन्दर थीं व्रज की राधा।
इस तरह कदापि न आयी
उनके सतीत्व में बाधा॥

सावित्री की छवि में क्या
सन्देह किसी को होगा।
पर उसने पति-रक्षा की,
यम ने अपना फल भोगा॥

कितनी अभागिनी मैं हूँ,
मैं कुल की एक बला हूँ?
पति मुझसे मुक्त न होगा?
क्या सचमुच मैं अबला हूँ?

हे पृथ्वी, तुम फट जाओ,
सीता-सी मैं छिप जाऊँ।
हे अम्बर, टूट गिरो तुम,
मैं दबकर ही मिट जाऊँ॥

क्यों चाँद गगन पर हँसते,
क्यों हँसी बहन की होती।
क्यों शिशु-तारे मुसकाते,
माँ विकल तुम्हारी होती॥

जब मेरा पति बन्दी है,
तब मेरे जीने से क्या।
तब हित क्या मधु पीने से,
अनहित विष पीने से क्या॥

यह सोच बिलपती रानी,
मुख पर दुख दरस रहे थे।
आँखों से सावन के घन
अञ्चल पर बरस रहे थे॥

इतने में कहा किसी ने,
कानों में छिप रानी के।
धिक, रोती है सीने पर
गौवरमय रजधानी के॥

इस वीर किले पर पहले,
यह कायरता आयी है।
धिक, पहले पहल किले पर
क्षत्राणी मुरझायी है॥

क्या क्या न अनर्थ करेगा,
यह तेरा रोना-धोना।
तेरे रोने से गलता
तेरा ही रूप सलोना॥

वैरी-दल भग जायेगा,
क्षण तेरे जग जाने से।
जिस तरह तिमिर भग जाता,
दिनराज-प्रभा आने से॥

तू सिंह-सुता क्षत्राणी,
तुझमें काली का बल है।
तू प्रलयानल की ज्वाला,
तू क्यों बनती निर्बल है॥

तू लाल-लाल चिनगारी
आँखों में भरकर खोले।
स्वाधीन सिंहनी-सी तू,
स्वच्छन्द गरजकर बोले॥

फिर देख एक क्षण में ही,
पति मुक्त हुआ जाता है।
यह रावल-विरही गढ़ भी
सुखयुक्त हुआ जाता है॥

यह सुनकर चौंकी रानी,
ध्वनि मौन हुई कह भुन से।
नस-नस में बिजली दौड़ी,
हो गये नयन कुँनरुन से॥

बन गया वदन ईंगुर-सा,
भौंहें कमान-सी लरकीं।
लोहित अधरों में कम्पन,
रानी की आँखें फरकीं॥

उत्साह मिला साहस को,
बल मिला हृदय-भावों को।
छिप गयी लाज कोने में,
मिल गयी प्रगति पाँवों को॥

तन-रोम-रोम से निकलीं,
पातिव्रत की ज्वालाएँ।
उससे किसकी उपमा दें,
उपमान कहाँ से लाएँ॥

कस लिया वक्ष अञ्चल से,
कटि में कटार खर बाँधी।
करवाल करों में चमकी,
दरबार चली बन आँधी॥

चल पड़ी, जिधर करते थे
रण के विचार दरबारी।
दरबार-चतुर्दिक पहरा
देते सैनिक असिधारी॥

यह देख दासियाँ धायीं,
मज्जित आँसू के जल में।
वे मना-मनाकर हारीं,
वह लौट सकी न महल में॥

जिसको घर से आँगन में
आने में ही व्रीड़ा थी,
जिसको शिरीष-कुसुमों पर
छलने में ही पीड़ा थी,

प्रतिबिम्ब भूलकर जिसका
अब तक न किसी ने देखा,
अब तक न बनी थी भू पर
जिसके चरणों की रेखा,

वह चली कठोर मही पर,
चरणों के चिह्न बनाती।
चिह्नों पर द्रुमावली थी
झुक-झुककर फूल चढ़ाती॥

वह पहुँची वहाँ, जहाँ पर
दरबार लगा था रण का।
क्षण झेंपी, अखर गया पर
उसको विलम्ब उस क्षण का॥

पति के वियोग ने ऐसी
अन्तर में व्यथा उठायी।
रुक सकी न दरवाजे पर,
वह विकल मृगी-सी धायी॥

लज्जा से घूँघट काढ़े
वह रंगमंच पर आयी।
मानो आश्विन के घन में
बिजली ने ली अँगड़ाई॥

रानी को देख अचानक
उठ झुके सभी दरबारी।
उठ उठ की वीर-सलामी,
जय-जय बोले अधिकारी॥

उच्छ्वास सर्पिणी-सी ले,
लेकर कर में खंजर खर।
बोली वाणी-वाणी में
दावानल की ज्वाला भर॥

रण के विचार-विनिमय में
वीरो! इतनी देरी क्यों।
अरि को दहलानेवाली
बजती न समर-भेरी क्यों॥

इस तरह विचार करोगे।
तो किला न रह सकता है।
इस वीर-प्रसविनी माँ का।
मुख खिला न रह सकता है॥

ललकार रहा वैरी-दल,
तुम रण-विचार में डूबे।
तलवार शीश पर लटकी,
तुम बाँध रहे मनसूबे॥

अब समय न है सोने का,
अब समय न रँडरोने का।
यह समय रुधिर-गंगा में
तलवार-धार धोने का॥

स्वर निकल रहा है प्रतिपल,
मेवाड़-भूमि-कण-कण से।
मर मिटो आन पर अपनी,
अब डरो न हिचको रण से॥

रावल के वंशधरो तुम,
राणा के वंशधरो तुम,
मत कायर बनकर बैठो,
शोणित से भूमि भरो तुम॥

अपमान वह का कैसे
तुम जान मौन हो वीरो!
केसरिया-बाना पहने
तुम कहो कौन हो वीरो॥

दिनरात अवज्ञा अरि से
माँ-बहनों की होती है।
हूँ पूछ रही, बोलो क्यों
योधा-जमात सोती है?

गढ़ के पाषाणों में भी
हा, जब कि एक हलचल है !
फिर क्यों न मिनकता कुछ भी
बापा - रावल का दल है ॥

क्यों दूध कलंकित करते,
क्षत्राणी के सीने का।
बोलो तो रूप यही है,
क्षत्रिय - जन के जीने का ?

धिक्कार तुम्हारे बल को !
धिक्कार रवानी को है !
अरि गरज रहा सीने पर
धिक्कार जवानी को है !

यदि चाह दिनेश - प्रभा की
जुगनू के मन में आयी;
यदि आँख सिंहनी पर है,
जम्बुक ने आज गड़ायी;

तो क्या अधिकार, करो पर
तुम भी अब छल - चतुराई।
सीधे से अरि से बोलो,
अन्तर में भर कुटिलाई ॥

कह दो कि सात सौ सखियाँ
उसके सँग - सँग रहती हैं।
उसकी तन - पीड़ा को ले
अपने तन पर सहती हैं ॥

उसके पति को छोड़ें, तो
अपनी सहचरियों को ले,
वह शोभित महल करेगी,
ले साथ सात सौ डोले ॥

स्वीकार करे यदि अरि तो
संगर की करो तयारी।
बापा के वीरों से हो
सज्जित प्रत्येक सवारी॥

डोलों में योद्धा बैठें,
योधा ही करें कँहारी।
योद्धा ही परिचारक हों,
रणधीर वीर असिधारी॥

इस छल से खिलजी-दल पर
तुम टूट पड़ो रणधीरो।
तुम भग्न सेतु-सरिता-जल-
से फूट पड़ो रणधीरो॥

तुम क्यों हिल-डुल न रहे हो,
बोलो तो क्या कहते हो।
तुम किस विचार-सागर में
डूबे-डूबे बहते हो॥

इन्कार करो यदि तुम, 'तो
मैं बनूँ महाकाली-सी।
उत्साह न हो तो बालो,
गरजूँ खप्परवाली-सी॥

मैं शेषनाग की करवट-
सी एक वार जग जाऊँ।
मैं आग बनूँ बैरी-वन
में दावा-सो लग जाऊँ॥

वैरी-दल में क्या बल है,
क्षण में शोणित पी जाऊँ।
असि महिषमर्दनी-सी ले
अरि-शीश-शीश पर धाऊँ॥

गोरा बादल गर्जन
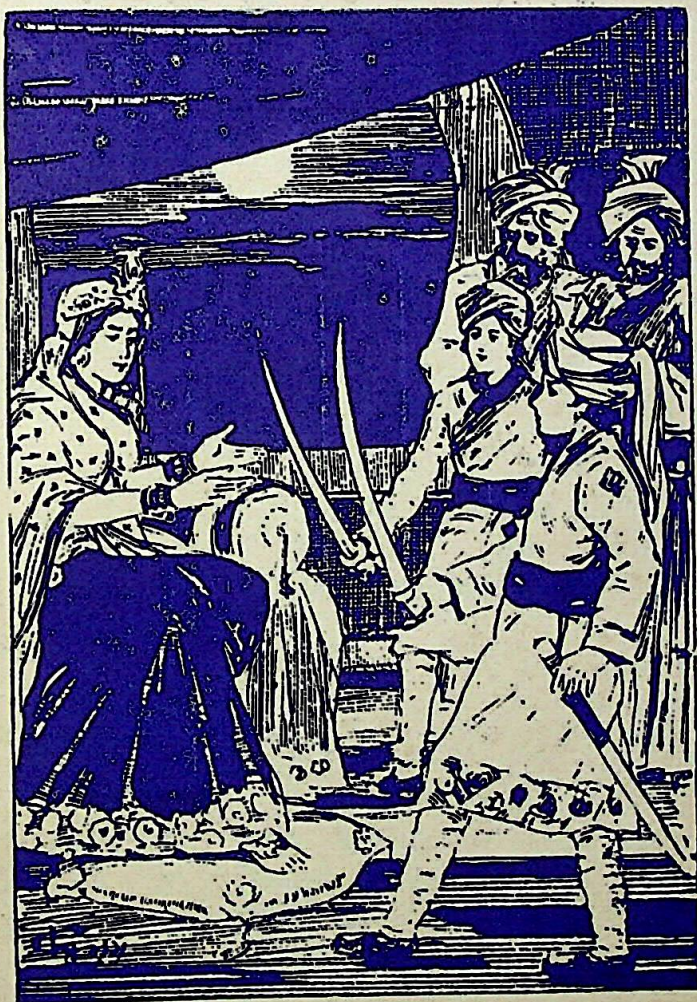
आँधी से आज मिला दूँ,
अपनी तूफ़ानी गति को।
मैं मुक्त करूँ क्षणभर में,
कारा से अपने पति को॥

उस काल रमा-काली-सी,
शशि-किरण-कला, ज्वाला-सी।
वाणी से आग बरसती,
खरतर - रविकर - माला - सी॥

रानी की बातें सुनकर।
दो बालक आगे आये।
बोले—माँ, तेरी जय हो,
संगर के बादल छाये॥

यदि हम गोरा बादल, तो
वैरी-दल दलन करेंगे।
बन्दी को मुक्त करेंगे,
क्षणभर भी कल न करेंगे॥

हम क्रुद्ध जिधर जायेंगे,
हम विजय उधर पायेंगे।
हम तुझसे सच कहते माँ,
हम युद्ध-विजय लायेंगे।

हम वीर, मगर अन्धों को
माँ, तूने पथ दिखलाया।
हम धीर, मगर तृषितों पर
माँ, तूने मधु बरसाया॥

माँ उसी ओर हम होंगे,
तेरा जिस ओर इशारा।
खिलजी-दल पर लहरेगा,
माँ, पी-पी रक्त दुधारा॥

सुनकर ललकार सती की,
सुन-सुनकर गोरा-तर्जन।
चौंके सैनिक दरबारी,
सुन-सुनकर बादल-गर्जन॥

उठ-उठ, सामन्तों ने की,
रानी की वीर-सलामी।
बोले—हम तेरे पथ पर,
हम तेरे ही अनुगामी॥

इंगित की ही देरी थी,
कह तो ब्रह्माण्ड हिला दें।
देरी थी उद्बोधन की,
भू से आकाश मिला दें॥

मारुत ने सुरभि मनोहर
रानी के तन से पायी।
गा-गाकर विहगों ने दी,
रानी को अमर बधाई॥

सूरज ने महल-झरोखों
से देखा रूप सभा का।
बिखराया वीर-वदन पर
साकार प्रभाव प्रभा का॥

गूँजी शत-शत कण्ठों में,
रानी की वीर-कहानी।
ऊषा ने सखि के तन पर
डाला सोने का पानी॥

खर-रक्त-वदन सूरज ने
पूरब से आँख तरेरी।
छिप गया चाँद पश्चिम में,
भागी निशि उसकी चेरी॥

कुछ सुना, पथिक, कुछ कह देंगे,
जब कभी चाह तेरी होगी।
उस सती पद्मिनी रानी के
अर्चन में अब देरी होगी॥

यह कह चलने के लिए तुरत
ले लिया यती ने मृगछाला।
कातर आँखों में आँसू भर
गद्‌गद्‌ बोला सुननेवाला॥

चल पड़े कहाँ क्षणभर देरी
की व्यथा आज सहनी होगी,
उस जगजननी पतिप्राणा की
पूरी गाथा कहनी होगी॥

आरम्भ कथा हो, देर न हो,
खलती पल भर की भी देरी।
लाचार साधु ने कहने को
गोमुखी - बीच माला फेरी॥

चाव से, उमंग से,
भाव - भरित ढंग से।
वीर - कहानी चली,
काव्य - रवानी चली॥
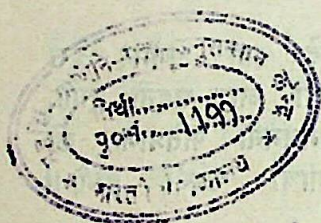
आठवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर,	सौम्यसिताष्टमी,
सारंग, काशी।	१९९८

अन्धकार दूर था,
झाँक रहा सूर था।
कमल डोलने लगे,
कोष खोलने लगे॥

लाल गगन हो गया,
मुर्ग मगन हो गया।
रात की सभा उठी,
मुसकरा प्रभा उठी॥

घूम - घूमकर मधुप,
फूल चूमकर मधुप।
गा रहे विहान थे,
गूँज रहे गान थे॥

रात - तिमिर लापता,
चाँद का न था पता।
तुहिन - बिन्दु गत कहीं,
छिप गये नखत कहीं॥

पवन मन्द बह चला,
मधु मरन्द बह चला।
अधखिले खिले कुसुम,
डाल पर हिले कुसुम॥

विविध रंग ढंग के,
विविध रूप - रंग के।
बोलते विहंग थे;
बाल - विहग संग थे ॥

भानु - कर उदित हुए,
कंज खिल मुदित हुए।
न्याय भी उचित हुए,
कुमुद संकुचित हुए ॥

भासमान बढ़ चला,
ताप - मान बढ़ चला।
रजत-रश्मियाँ उतर,
खेलने लगीं बिखर ॥

काँच में खिलीं कहीं,
ज्योति में मिलीं कहीं।
पंक में धँसीं कहीं,
फूल में हँसी कहीं ॥

जान गमन रात का,
जान समय प्रात का,
वीर सब उछल पड़े;
महल से निकल पड़े ॥

दिवस के विकास में,
किरण के प्रकाश में,
गोलियाँ दमक उठीं;
बर्छियाँ चमक उठीं ॥

सात सौ सवारियाँ,
तीव्रतर कटारियाँ,
तेग तबर आरियाँ,
चल पड़ीं दुधारियाँ ॥

मखमली उहार थे,
स्यूत रतन - तार थे।
सूरमे कँहार थे,
जो ज्वलित अँगार थे॥

दुर्ग की तरी प्रबल,
राजकेसरी प्रबल,
जयति बोलने लगे,
शृंग डोलने लगे॥

जयति - जय - निनाद से,
जयति - जयति - नाद से,
गूँजने नगर लगा;
एक एक घर लगा॥

जय उमे, गणेश जय,
रुद्र - हर - महेश जय
जय निशुम्भमर्दनी
जय महिषविमर्दनी॥

जय असुर - विदारिणी,
जय त्रिशूलधारिणी।
देवि! पथ प्रशस्त कर,
शत्रु - व्यूह त्रस्त कर॥

माँ, न तनिक देर कर,
आज तू अहेर कर,
गरज - गरज हेरकर।
अहित मार घेरकर॥

जयति - जयति बोलकर,
बाहु - शक्ति तालकर,
हाँ, कँहार चल पड़े;
वीर - उर उछल पड़े॥

वीर बहू बन चले,
कुन्त कर वहन चले,
राजपूत - जन चले
काल - दूत तन चले ॥

मत्त सिंह - दल चला,
हाँ, अकूत बल चला।
साथ चलीं डोलियाँ,
गूँज उठीं बोलियाँ ॥

दुर्ग का महारथी,
समर - शूर सारथी,
बोल उठा ताव से,
राजसी प्रभाव से—

तुम अजर, बढ़े चलो।
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो ॥

काँप रहा हाड़ हो,
घोर विपिन झाड़ हो।
सामने पहाड़ हो।
सिंह की दहाड़ हो ॥

शेषनाग हो अड़ा,
क्यों न काल हो खड़ा।
पड़ रहे तुषार हों,
झड़ रहे अँगार हों,

पर न तुम रुको कभी,
पर न तुम झुको कभी।
नाग पर चले चलो,
आग पर चले चलो ॥

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

देश की शपथ तुम्हें,
देश की शपथ तुम्हें।
मददगार राम है,
लौटना हराम है॥

एक गति बनी रहे,
एक मति बनी रहे।
जोश भी न कम रहे,
बाढ़ पर कदम रहे,

क्यों न चलें गोलियाँ,
पर न रुके डोलियाँ।
घूमते हुए चलो,
झूमते हुए चलो,

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

कौन कह रहा निबल,
कौन कह रहा कि टल।
झाड़ दो उसे अभी,
गाड़ दो उसे अभी॥

लक्ष्य तो महान है,
एक इम्तहान है।
पर न रंच भय करो।
राह रक्त-मय करो॥

विघ्न ठेलते चलो,
हाँ ढकेलते चलो।
मस्त रेलते चलो,
खेल खेलते चलो॥

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

राजसद्मिनी न है,
आह, पद्मिनी न है।
एक देवता कहो,
स्वर्ग का पता कहो॥

कौन चाहता उसे,
कौन डाहता उसे।
दो उसे दुरा अभी,
भोंक दो छुरा अभी॥

यही आन-बान है,
राजपूत—शान है।
लक्ष्य जानकर चलो,
वक्ष तानकर चलो॥

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो,
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

आसमान फट चले,
मेदिनी उलट चले।
आग की लपट चले,
अंग - अंग कट चले॥

गर त्रिकूटधर गिरे,
सूर छूटकर गिरे।
चाँद फूटकर गिरे,
व्योम टूटकर गिरे॥

पर न एक दम रुको
पर न एक दम झुको।
चाह पर चले चलो,
राह पर चले चलो॥

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

मेघ गरजता रहे,
पवन तरजता रहे,
समय बरजता रहे,
अन्त का पता रहे॥

त्रिपुर-सुर विरुद्ध हों,
दिग्दिगन्त क्रुद्ध हों।
भूलकर न भय करो,
युद्ध में विजय करो॥

प्रश्न है जटिल महा,
शत्रु है कुटिल महा।
आन-बान पर चलो,
खेल जान पर चलो॥

तुम अजर, बढ़े चलो,
तुम अमर, बढ़े चलो।
तुम निडर, बढ़े चलो,
आन पर चढ़े चलो॥

अब न शत्रु दूर है,
जो कि महाक्रूर है।
अब न बोलते चलो,
विष न घोलते चलो ॥

भूत से शिविर खड़े,
अरि - समूह - शिर खड़े।
तेग - तबर लो छिपा,
रंग - जबर लो छिपा ॥

क्षण दुधार मन्द हों,
हाँ, उहार बन्द हों।
ध्वनि न अनारी उठे,
नाद कँहारी उठे ॥

दुर्ग से उतर गये,
एक सिन्धु तर गये।
अरि-शिविर समीप है,
सामने महीप है ॥

मौन वीर हो गये,
मौन धीर हो गये।
पर समीर हो गये,
तुरत तीर हो गये ॥

एक ही निदेश में
एक ही निमेष में।
बोलियाँ सकुच गयीं,
डोलियाँ पहुँच गयीं ॥

सात सौ सवारियाँ,
हैं सभी कुमारियाँ।
सुन नवीन नारियाँ
हो गये मगन मियाँ ॥

अरि अधीर हो उठा,
व्यस्त - चीर हो उठा।
वह कुलाँचने लगा,
मस्त नाचने लगा॥

मौलवी कहाँ गया,
वह नबी कहाँ गया।
देर क्यों निकाह में,
पद्मिनी - विवाह में॥

राज आज ही मिला।
ताज आज ही मिला।
आज त्राण पा गया,
आज प्राण पा गया॥

काजी बुलवाया गया वहाँ,
हाजी बुलवाया गया वहाँ।
जल्दी से ब्याह रचाने को
गाजी बुलवाया गया वहाँ॥

हँसा पथिक हँस पड़ा पुजारी,
हँसी - हँसी में हास बढ़ गया।
पथिक - पुजारी के विनोद में
खिलजी का इतिहास बढ़ गया॥

अरि खिजाब की, रतन-मुक्ति की
गाथा से प्लावित कर वाणी।
डोली - भीतर की दुलहिन की,
अट्टहास कर कही कहानी॥

हँस-हँस सुनता पथिक विनोदी,
मगन पुजारी की बातों को।
गोरा - बादल के कौशल को
वीर कहारों की घातों को॥

नवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर, पौष अमा,

सारंग, काशी १९९८

एक पहर दिन बीत गया था,
रवि की प्रखर ज्योति निखरी थी।
वन-तरु-तरु के पल्लव-दल पर,
जल पर, भूतल पर बिखरी थी॥

खिलजी-भय से भीत बटोही
अचल-पथों में घूम रहे थे।
बाँध मुरेठे चरवाहे सब
बिरहा गा-गा झूम रहे थे॥

गाय, बकरियाँ, बकरे, भैंसे,
भैंस चर रही थीं झाड़ों में।
शेर, तेंदुए, बाघ, रीछ सब
विचर रहे थे झंखाड़ों में॥

धूल-धूसरित काले तन पर,
जल पीने के चिह्न व्यक्त थे।
कर में धनुष, तीर तरकस में
लिये क्रोध से भील रक्त थे॥

लकड़ी, कंडे, साग-पात ले
देहाती नगरों में आये।
लाद-लादकर लदुओं पर, कुछ
सौदागर गलियों में छाये॥

सौदा दे दे ठगते जाते,
गाहक का धन हरते बनिये।
और सती के बारे में इङ्गित
कर बातें करते बनिये॥

गाँवों में बेकार, जिन्हें कुछ
आज खेत पर काम नहीं था।
उन्हें पद्मिनी की चिन्ता से,
रंचमात्र आराम नहीं था।

खेतों की मेड़ों पर बैठे,
पाँच सात मिल खलिहानों में।
बातचीत करते किसान थे,
साँय-साँय फुस-फुस कानों में॥

इधर - उधर मिल-मिल कहते थे,
जाने क्या होनेवाला है।
आज दुर्ग - चित्तौड़ पद्मिनी
रानी को खोनेवाला है।

उधर डोलियों के आने से
पागल अरि करता नर्तन था।
उसका दुख था दूर हो गया,
मुख - मुद्रा में परिवर्तन था॥

मणिमय, झालरदार, मनोहर
हीरक-ताज शीश पर जगमग।
सोने के तारों की अचकन,
दमक रहे दमदम जिसके नग॥

पन्ना-कलित अँगूठी पहनी,
कामदार नव जूते पहने।
बने पहनते उससे जितने
उसने उतने गहने पहने॥

बार - बार पानी से धो - धो,
मुख पर सुरभित तेल लगाये।
पहन गले में मुक्ता - माला,
तन में इतर - फुलेल लगाये ॥

सज-बजकर जब ठीक हो गया,
दर्पण में अपना मुख देखा।
दाढ़ी के कुछ बाल पके थे,
उतरे मुँह से झुक - झुक देखा ॥

कामी इतना दुखी हो गया,
आँखों में भर आया पानी।
अनायास ही मुख से निकला,
बीती मेरी हाय जवानी ॥

मूर्च्छित हो, कुछ देर सोचकर,
लगा फेंकने बाल नोचकर।
पथिक, खून ही खून हो गया,
सारा तन-पट तून हो गया ॥

देख अलाउद्दीन खून को
किंकर्त्तव्य - विमूढ़ हो गया।
बोल उठा कामी कराहकर
प्रश्न बड़ा ही गूढ़ हो गया ॥

पर तत्क्षण बिस्तर के नीचे
देखी नव खिजाब की गठरी।
हिली खून से लथपथ दाढ़ी,
विहस उठी पागल की ठठरी ॥

तुरत खोल गठरी दाढ़ी पर,
बरंबार खिजाब लगाया।
परम परिश्रम कर कामी ने
वन - बकरे - सी उसे बनाया ॥

पुनः मुकुर के संमुख जाकर
सुषमा देखी अपने मुख की।
मलिन वदन खिल उठा हर्ष से,
रही न सीमा उसके सुख की॥

एक बार फिर तन को शोभा
देखी आँखें फाड़-फाड़कर।
बड़े गर्व के साथ निहारा,
अंग-अंग को झाड़-झाड़कर॥

तभी राजकुल के दो बालक,
गोरा-बादल ठीक आ गये।
सोता था दरबान इसलिए,
कमरे में निर्भीक आ गये॥

उन्नत शिर कर बोला बादल,
रानी एक विनय करती है।
रतन-मिलन की भीख माँगती,
बारबार अनुनय करती है॥

केवल एक घड़ी तक रानी
रतन सिंह से बात करेगी।
फिर आकर अपनी सुषमा से
इन मणियों को मात करेगी॥

अब तो रानी हाथों में है,
बादशाह के ही अधीन है।
राजमहल की श्री क्षण भर को
बनी रतन के लिए दीन है॥

अरि दाढ़ी पर हाथ फेरकर
क्षणभर तक तो मौन रह गया।
सोचा—'उसको छीन सके वह
वीर मही पर कौन रह गया॥

रानी एक घड़ी की ही तो,
इच्छा करती मिल लेने की।
दे उसका दिल उसको शायद,
मुझे चाह हो दिल देने की' ।।

बोला—'तुम भी ठीक कह रहे,
एक घड़ी से क्या होता है।
छोड़ दिया जायेगा रावल,
अरे आदमी ! क्या सोता है ।।

दरवाजे पर ही मरता है,
मूरख दरबानी करता है।
कहकर चाँटे चार लगाये,
अपनी मनमानी करता है ?

अभी जेल के दरवाज़ों के
ताले खोल निकाल रतन को।
रानी के दर्शन करने दे,
अधिक न दुख में डाल रतन को ।।

रहम चाहिए करना उस पर,
उसकी प्यारी छूट रही है।
नहीं जानता, भाग्य-सुराही,
बेचारे की फूट रही है' ।।

वैरी की बातें सुनकर वे,
दोनों बालक हँसकर पल में।
उससे ले आदेश, चले फिर,
बालकेसरी अपने दल में ।।

इधर डोलियाँ रखी हुई थीं,
घाती मौन कहार खड़े थे।
आँखों से बातें करते थे,
प्रतिक्षण उनके कान खड़े थे ।।

आते देख वीर बादल को
सबने कुटिल कटार निहारी।
एक बार तिरछी आँखों से
तलवारों की धार निहारी॥

वीर-भुजाएँ लगीं फड़कने,
किन्तु न तिल भर डोल सके वे।
गूँज रही थी हुंकृति मुख में,
पर न रंच भी बोल सके वे॥

उर में एक रहस्य छिपाये,
अपने दल में वीर आ गये।
गोरा-बादल के आने से,
मानों सब धन गया पा गये॥

पंजर-मुक्त केसरी के सम
चला रतन कारा से तत्क्षण।
देखा चारों ओर क्रोध से,
भय से काँप उठे भू-रज-कण॥

एक युवक उसको डोलों में
तुरत घुमा बाहर ले आया।
आँख मारकर उसने उसको।
तरु-झुरमुट में कुछ दिखलाया॥

रानी को घोड़े पर देखा,
रिक्त एक घोड़ा भी देखा।
इङ्गित पा चढ़ गया अश्व पर,
जग ने वह जोड़ा भी देखा॥

एक एड़ मारी रावल ने,
अश्व कूदकर तीर बन गया।
एक एड़ रानी ने मारी,
घोड़ा उड़ा समीर बन गया॥

नहीं किसी ने उन दोनों को
उन घोड़ों पर चढ़ते देखा।
देख सके कुछ ही नर केवल,
दूर क्षितिज पर रज की रेखा॥

पलक भाँजते दुर्ग-शिखर पर
दायें-बायें खड़े हो गये।
घोड़े ही पर हाथ मिलाकर,
क्षणभर विह्वल बड़े हो गये॥

एक घड़ी के वाद क्रोध से,
झुँझला उठा अचानक कामी।
कहा - रतन अब क्या करता है,
लाल हो गया अघ-पथ गामी॥

तुरत कमर से असि निकालकर,
डेरे से बाहर निकला वह।
बढ़ा वेग से उन डोलों पर,
मानो वन नाहर निकला वह॥

आते देख क्रुद्ध खिलजी को,
राजपूत तैयार हो गये।
वीर कँहारों के हाथों में
झटके से हथियार हो गये॥

बढ़कर उठा दिया वैरी ने,
तुरत उहार एक डोली का।
मारे डर के चीख उठा वह,
गूँजा रव हर-हर बोली का॥

डोली के भीतर देखा, तो
दुलहिन नहीं, काल बैठा है।
डँस लेने के लिए काढ़ फण
एक कराल व्याल बैठा है॥

मेरी जान बचा रे कोई,
उलटे पैर फिरा हल्ला कर।
पाजामा सरकाता घर की
ओर भगा अल्ला-अल्ला कर॥

बिखरे हुए वीर वैरी के
पलक मारते वहाँ आ गये।
अपने खरतर हथियारों का
राजपूत आहार पा गये॥

बोला पथिक, कहो आगे क्या
दोनों दल में रण होगा?
वीरों के शोणित में मज्जित
क्या गढ़ का कण-कण होगा?

गोरा-बादल बालसिंह के
रण की कथा सुनाओ तुम।
भेरी-रव में अल्लाअकबर,
हर-हर शंकर गाओ तुम॥

पथिक-वचन सुन उस विरक्त ने
बुद-बुदकर माला फेरी।
पावन गाथा रुकी, हो गयी
सती-ध्यान में कुछ देरी॥

एक घड़ी के बाद खुले दृग,
जप का अन्त सुमेर मिला।
पद्मासन का बन्ध खुला,
दोनों को साहस ढेर मिला॥

कथा हुई आरम्भ साथ ही,
आँखें चमकीं दोनों की।
मूछ तनीं, भुजाएँ फड़कीं,
भौंहें तमकीं दोनों की॥

●

दसवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर
सारंग, काशी

वसन्तपञ्चमी
१९९८

नव वसन्त के कुसुम-शरों से
मार भगाया गया शिशिर।
अर्धचन्द्र देकर जग के
उस पार लगाया गया शिशिर॥

छिपा काल की गोदी में,
जब हारा शिशिर वसन्त शक्त से।
दोनों ऋतुओं के संगर से
तरु भी तर हो गये रक्त से॥

इसीलिए जो पल्लव निकले,
शोणित-स्नात लाल ही निकले।
या तरु - तरु की डाल - डाल से
बनकर ज्वलित ज्वाल ही निकले॥

जान पराजय वीर शिशिर के
गाँव फूँकना रंच न भूले।
वही लगी है आग भयंकर,
ये पलाश के फूल न फूले॥

लाल-लाल आँखें कर कोयल,
बौरे आमों की डाली पर,
मधु की विजय सुनाती फिरती;
मस्त विजय थी सुखाली पर॥

यशोगान करते अलि गुन - गुन,
झूल टहनियों के झूलों पर।
कानों में कुछ कह जाती थीं,
बैठ तितलियाँ नव फूलों पर ॥

मन्द - मन्द मलयानिल वन-वन,
यश - सौरभ लेकर बहता था।
सबसे मिलकर नव वसन्त के
गौरव की गाथा कहता था ॥

केवल पिक के ही न, विजय पर
सभी खगों के गान सुरीले।
वन - उपवन भर देते गा - गा,
डाल - डाल पर गायन गीले ॥

उधर मृदुल मधु - की दोपहरी
गूँज रही थी विहग - गान से।
इधर कहारों की तलवारें
निकल रही थीं म्यान-म्यान से ॥

परदे उठे सूरमे निकले,
मानो निकले सिंह माँद से।
दशो दिशाएँ थरथर काँपीं,
हर - हर के हुङ्कार - नाद से ॥

एक साथ ही सिंहनाद कर
बोल दिया धावा डेरों पर।
आग बरसने लगी अचानक,
खिलजी के निर्दय घेरों पर ॥

अरि की आँखें तलवारों की
चकाचौंध से मन्द हो गयीं।
हर - हर की उद्दाम बोलियाँ
नभ तक और बुलन्द हो गयीं ॥

क्षण भर तक तो वैरी-सेना,
थकित-चकित-सी रही देखती।
और रही व्याकुल आँखों से
लाल रक्त से मही देखती॥

किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी
तलवारें शिर काट रही थीं।
रुण्ड-मुण्ड से समर-मेदिनी,
नाच-नाचकर पाट रही थीं॥

जहाँ एक क्षण पहले मंगल-
गान-कृत्य होनेवाला था।
कौन जानता, वहाँ मृत्यु का
भयद नृत्य होनेवाला था॥

पतझड़ के पत्ते तरु से, शिर
धड़ से अलग हुए जाते थे।
अरावली-से अचल सूरमे,
जड़ से बिलग हुए जाते थे॥

योधा भालों की नोकों पर,
सने खून से जीभ निकाले।
निकली आँखों से भय भर-भर,
विकल मर रहे थे मतवाले॥

खून फेंकता मुँह से कोई,
आखें अलग निकल आई थीं।
वीर बरछियाँ निकल रही थीं,
जो सौ बार निगल आई थीं॥

भगा कटार चुराकर उर में,
दो डग भी न भागने पाया।
वीर तड़पकर वहीं सो गया,
उसे किसी ने नहीं जगाया॥

वीर राजपूतों की टोली,
आँख मूँद, कर वार रही थी।
कभी छुरा, तो कभी दुधारी,
कभी निकाल कटार रही थी॥

खून वैरियों का करने से
खून चढ़ गया था वीरों पर।
हिंसा से आँखें जलती थीं,
जय सवार थी रणधीरों पर॥

कभी कभी आगे पीछे हो,
गोरा-बादल पिल पड़ते थे।
देख पैंतरे उन दोनों के,
अरि-सेनानी हिल पड़ते थे।

तरबूजे में छूरी जिस तरह,
बिना दबाये ही घुस जाती॥
उसी तरह बादल की बरछी,
बिना घुसाये ही घुस जाती॥

हाथी-घोड़ों के सवार शर
खा-खाकर बद-बद गिरते थे।
कठिन कटारों के प्रहार से,
पैदल भी भद-भद गिरते थे॥

काट रहा उस पार और इस
पार सिपाही काँप रहे थे।
गोरा था इस पार और उस
पार बहादुर हाँफ रहे थे॥

एक साँस में ही गोरा ने
कण्ठ काटकर साफ कर दिये।
वैरी के अपराध युद्ध में
प्राण-दण्ड ले माफ कर दिये॥

तब तक शत्रु-सवारों की भी
सेना वहाँ तुरन्त आ गयी।
रावल के उन नर-सिंहों को
मानो मौत तुरन्त आ गयी॥

देख सवारों को चिनगारी
रोम-रोम से लगी निकलने।
दोनों आँखें लाल हो गयीं,
लगी क्रोध से काया जलने॥

भौहें कुटिल कमान हो गयीं,
पलकें उठीं उतान हो गयीं।
गोरा की असि-दीप्त भुजाएँ,
फड़कीं काल समान हो गयीं॥

प्रलय - मेघ-सा गरज म्यान से
एक प्रखर तलवार निकाली।
साथ - साथ हुंकृति के उसने
गोहुवन-सी फुफकार निकाली॥

और दूसरे ही क्षण अरि के
हय पर कूद सवार हो गया।
अश्वारोही गिरा धरा पर,
जीवन के उस पार हो गया॥

तुरत एड़ मारी गोरा ने,
तमक तुरग तूफान बन गया।
नभ की ओर छलाँग मारकर,
उड़ा राम का बाण बन गया॥

गोरा के डर से घोड़े ने
अपने ही घोड़ों को घेरा।
लूट लिया उनका साहस सब,
बना प्रखर उद्दण्ड लुटेरा॥

वाजि-गर्दनों से मिल - मिलकर
छप-छप करने लगी दुधारी।
गिरी सवारों पर बिजली-सी
गोरा की करवाल - कुमारी ॥

गरम - गरम शोणित पी-पीकर,
वमन सवारों पर करती थी।
तो भी नहीं सवार - रक्त से,
उदर - दरी उसकी भरती थी ॥

भूखी बाघिन - सी गिरती थी,
फिरकी - सी दल पर फिरती थी।
इतनी थी तैराक, पैर के
विना रक्त-सरिता तिरती थी ॥

जान उसी की बची युद्ध से,
जिसने भगकर जान बचायी।
औरों ने तो रण करने से
अपनी मरकर जान बचायी ॥

गिरे शत्रुओं के शत कोड़े
अंगुल भर बढ़ सके न घोड़े।
गोरा की तलवार - चोट से
साथ सवारों के तन छोड़े ॥

इतने में अंकुश के बल से
मत्त हाथियों का दल आया।
देख अकेला ही गोरा को
शिर उतरता बादल आया ॥

पथिक, पद्मिनी के समक्ष की
वही प्रतिज्ञा उस दिन वाली।
आज सामने ही दोनों के
अट्टहास करती मतवाली ॥

रोम - रोम दोनों के तत्क्षण,
अंग - अंग के खड़े हो गये।
बढ़े ओज - बल, देह - यन्त्र के
पुरजे - पुरजे कड़े हो गये॥

रिक्त वाम कर देख वीर का
विकल हो उठी कठिन दुधारी।
बोली अभी निकाल म्यान से
मुझको रहने दे न कुमारी॥

आज रक्त - सिन्दूर लगा लूँ,
आज सुहागिन बनकर घूमूँ।
मिल लूँ गले बिदा के पहले,
सहेलियों के पद - कर चूमूँ॥

रँगी रक्त से चुनरी पहनूँ,
नृत्य करूँ अरि - कण्ठ छाँट दूँ।
साग - पात की तरह काटकर
वाजि - गजों से भूमि पाट दूँ॥

यह कहकर तलवार म्यान से
बायें कर में आप आ गयी।
युद्धस्थल में प्रखर धार की
एक भयंकर ज्योति छा गयी॥

दोनों हाथों की तलवारें
मस्त गजों में घूम रही थीं।
डूब - डूब शोणित - सागर में
बारबार भू चूम रही थीं॥

एक पी रही रक्त, दूसरी
कर्त्तन में बेजोड़ लगी थी।
कौन काटती अधिक गजों को,
दोनों में यह होड़ लगी थी॥

कभी छपाछप कभी तैरतीं,
कभी डूबतीं उतरा जातीं।
वैरी - दल के रुधिर - सिन्धु में,
और कभी डूबी रह जातीं॥

एक डूबकर उतरा आयी,
डूबी एक हेलकर आयी।
मत्त हाथियों के शोणित से
होली एक खेल कर आयी॥

कभी नाचती चलीं साथ ही,
दोनों कभी हाथ से धायीं।
कभी चमकती उठीं रुधिर के
नद में कूद नहाकर आयीं॥

क्षण भर में ही घटा गजों की,
गोरा - असि - आँधी से फूटी।
उसके कर्कश - कर - प्रहार से
द्विरद - शृङ्खला तड़ से टूटी॥

पर धोखे से एक करी ने
वार किया पीछे से आकर।
हरके से चल पड़ा मत्त गज,
हलचल हाहाकार मचाकर॥

घोड़े को तो पकड़ लिया, पर
पा न सिंह को सका वहाँ पर।
बल्कि गिरा दो टुकड़े होकर,
और मत्त गज गिरे जहाँ पर॥

तुन्दिल गज के देह - भार से
पिसकर अश्व पिसान हो गया।
एक घड़ी का मित्र तुरंगम,
मरकर एक निशान हो गया॥

लेकिन घेर लिया गोरा को,
मातङ्गों ने सभी ओर से।
उस दुर्जय रणमत्त सिंह को॥
चले चरीने कोर-कोर से॥

पर उसकी दोनों तलवारें
दो तड़ितों-सी तड़प रही थीं।
मत्त मतङ्गों पर गिर-गिरकर,
प्राण बराबर हड़प रही थीं॥

गौरैयों में बाज पड़ा था,
विहगों में खगराज पड़ा था।
मानो घनतम के घेरों में
प्राची का दिनराज पड़ा था॥

कभी रक्त से तर हो जाता,
खूनी शेर-बबर हो जाता।
भैरव प्रलयंकर हो जाता,
दन्ती-दल भर-भर हो जाता॥

झुण्ड काटकर तुण्ड उड़ाया,
पूँछ काटकर मुण्ड उड़ाया।
अपनी खरतर तलवारों से
छपछप विकल वितुण्ड उड़ाया॥

मर-मर समर-मतङ्ग गिरे या
नभ के बादल घिरे धरा पर।
या हिल-हिल भूचाल-वेग से
काले पर्वत गिरे धरा पर॥

अङ्ग-अङ्ग पर थका वीर का,
जीवन-स्वर का ताल आ गया।
तर-तर चला पसीना तन से,
गोरा का भी काल आ गया॥

हँफर-हँफर वह हाँफ रहा था,
गरम रक्त बह रहा व्रणों से।
उसके नीचे की जमीन भी
भींग रही थी स्वेद-कणों से॥

वीर साँस लेने को ठहरा,
साँसों से संसार भर गया।
तबतक अहि के सदृश किसी का
वाण कलेजा पार कर गया॥

मूर्च्छित होकर गिरा धरा पर,
कोलाहल करते अरि धाये।
मूक चेतना हीन वीर पर
सबने सब हथियार चलाये॥

एक साथ ही गिरीं कटारें,
एक साथ सौ-सौ तलवारें,
रक्त-कलित गोरा के तन पर
बरछों की अगणित फुफकारें॥

पहले चोटी काट दी गई,
लोथों से भू पाट दी गई।
निर्दयता से प्राणहीन की
बोटी-बोटी काट दी गई॥

निकली बोटी-बोटी से ध्वनि,
मिटो जवानो, सती-मान पर।
वीर, मर मिटो आन-बान पर,
वीर, मर मिटो स्वाभिमान पर॥

अजर-अमर है गोरा मरकर,
बसा हुआ जग के प्राणों में।
उसकी कथा कही जाती है,
अब तक गढ़ के पाषाणों में॥

पथिक, रुधिर से लथपथ बादल,
गोरा की विधवा से बोला—
चाची, चाचा के सङ्गर के
भय से, खिलजी का दल डोला॥

शीश खेत की तरह काटकर
अपना असि-जौहर दिखलाया।
शव-शय्या पर स्वयं सो गये,
नहीं जागते बहुत जगाया॥

चाचा ने रुख जिधर किया,
शिर काट-काटकर ढेर लगाया।
मुरदों में छिप मौन हो गये,
नहीं बोलते बहुत बुलाया॥

यह कहकर बालक बादल की
आँखों में भर आया पानी।
देख बाल की विकल वेदना
बोल उठी गोरा की रानी॥

लाल, न तुम क्षण भर भी रोना,
रोने से मैं तर न सकूँगी॥
प्रियतम के उन्मुक्त पदों को
पावक-पथ से धर न सकूँगी॥

एकाकी ही स्वर्गपुरी में
नाथ प्रतीक्षा करते होंगे।
अपनी रानी से मिलने की
क्षण-क्षण इच्छा करते होंगे॥

इससे अभी चिता के पथ से
मैं जाऊँगी, चिता सजाओ।
उठो, फूल शव पर बरसाओ,
गीत विदा के मिल-मिल गाओ॥

वासन्ती संध्या ने सब पर,
अपनी काली चादर डाली।
खुलीं गगन की अगणित आँखें,
विलप रही पर कोयल काली॥

तम-परदों के भीतर खोते,
खोतों में थी मौन उदासी।
दक्ष-यज्ञ के हवन-कुण्ड में
कूद पड़ी यह कौन उमा-सी॥

उस नीरव निस्तब्ध निशा में,
गढ़ पर एक चिता बलती थी।
गोरा की प्यारी को लेकर
धधक-धधक ज्वाला जलती थी॥

चारों ओर चिता के बैठे,
राजपूत - परिजन - सेनानी।
विरह-ताप उर में जलता था,
आँखों से चलता था पानी॥

कहते ही उन दोनों की
आँखों में आँसू आये।
दोनों ने सिसक-सिसककर,
तन पर मोती बरसाये॥

अरि चला गया, पर उसकी
रानी पर आँख गड़ी थी।
इस कारए एक बरस तक,
रानी को व्यथा बड़ी थी॥

दोनों के रो लेने पर,
आख्यान चला रानी का।
जड़-चेतन सभी दृगों से
निकला प्रवाह पानी का॥

●

ग्यारहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर, फाल्गुनसिताष्टमी,
सारंग, काशी। १९९८

मधुऋतु का खून - खराबा,
वह कुहू - कुहू की बोली।
वीरों का वैरी - दल से
वह मस्त खेलना होली॥

तरु - तरु पर पक्षी - क्रन्दन,
मधुपों का गुन - गुन रोना।
गोरा की विरह - व्यथा से
गढ़ का शिर धुन - धुन रोना॥

सह सका न मधु का शासन,
आतप ने आँखें खोलीं।
मुख सूख गये फूलों के,
भय से लतिकाएँ डोलीं॥

आँधी - लू चली, बवण्डर
रज - व्यूह बनाकर धाये।
फल - भार - विनत वन के तरु,
भू पर झकझोर गिराये॥

पीले - पीले आमों के,
काले - काले जामुन के
फल गिरे, लूटने दौड़े
लड़के रव सुन के उनके॥

फल लूट-लूटकर खाये,
लेकिन जलहीन अभागे।
लाचार बगीचे से घर,
पानी-पानी कह भागे॥

गज-मस्तक से कटहल-फल,
डालों पर लटक रहे थे।
पानी के लिए बटोही
तालों पर भटक रहे थे॥

पथ के तरु ठूँठ खड़े थे,
लू-लपटों से जल-जलकर।
गन्दे पानी पीते थे,
पशु नदियों में हल-हलकर॥

टेढ़ी रेखाओं सी थीं,
नदियाँ सब पेट खलाये।
कुछ ही डबरों में ढबरे
जल से थीं मान बचाये॥

रह गया नाम को ही था
गंगा-यमुना में पानी।
सरयू के रेतों में तो,
आँधी उठती तूफानी॥

यदि और ताप बढ़ जाता,
तो हिन्द-महासागर भी।
जलहीन भयंकर होता,
ऊपर से चढ़ता ज्वर भी॥

पञ्चाग्नि रमा-सी लेती,
आतप की उन लपटों में।
उच्छ्वास ले रही रानी
थी, छिपा मयंक लटों में॥

थी देह पसीने से तर,
आँसू से तन की सारी।
दोनों के खारे जल से
डूबी थी एक कियारी॥

नभ पर घन इस गरमी की
गरमी निकालने आये।
जाने कितना पथ चलकर,
सन्देश किसी के लाये॥

बिजली ने तड़प-तड़पकर,
तप को बरजा समझाया।
माना न ताप देने से,
बादल ने भी धमकाया॥

तब लगी झड़ी बूँदों की,
बादल पर बादल आये।
गिरि-सागर पर खेतों पर,
हरहर पानी बरसाये॥

पहले तो लड़ा घनों से,
जल सोख लिया आतप ने।
पर सतत बरसने से जल
पीछे लग गया कलपने॥

मेड़ों के ऊपर से भी
धारा निकली पानी की।
उस हत्यारे आतप पर
घन ने भी मनमानी की॥

तालों के कूल-दरारों से
नये - पुराने दादुर।
पानी से निकल-निकलकर
लग गये, साधने सब सुर॥

घें - घें घरघों - घरघों के
मधु - रव से मुखर सरोवर।
गाये अपने छन्दों में
कण्ठों में सातो स्वर भर॥

थे कहीं घूमते विषधर
गोहुवन करइत मतवाले।
थे कहीं रेंगते बिच्छू,
भूरे - तन काले - काले॥

मखमली ओढ़ने ओढ़े
तरु - तल थी बीरवहूटी।
हा, कुचल दिया क्यों किसने,
किसकी थीं आँखें फूटी॥

सँझवत देने को आँचल
में दीप छिपाकर आया।
यह क्या, क्यों दीप-शिखा पर
शलभों का दल मँडराया॥

छिपकर तरु के झुरमुट में
'पी कहाँ' पपीहे बोले।
झुरुकी वयार पछुआँ की,
धानों के पौदे डोले॥

मछली के लिए सरों में
बैठे बक ध्यान लगाये।
हिल गया कहीं पर पानी,
धीरे से पैर उठाये॥

मेघों से पानी झरझर,
आँखों से आँसू झरझर
दृग मूँद पद्मिनी रानी
जी - जी जाती थी मर - मर॥

नभ पर व्याकुल बादल था,
बिजली की आग छिपाये।
भू पर रानी व्याकुल थी,
उर में पति-राग छिपाये॥

बैठे समीप रानी के,
दिन-रात रतन भी रोता।
पति-पत्नी की पीड़ा से
सारा गढ़ पीड़ित होता॥

कह-कह निष्ठुरता अरि की,
कह-कह वियोग की रातें।
दोनों रो-रो उठते थे,
कह-कह गोरा की बातें॥

मरने का उन्हें न दुख था,
केवल वियोग की पीड़ा।
प्रत्यक्ष सामने उनके,
करता वियोग था क्रीड़ा॥

मृग-दम्पति-हत्या का फल
दोनों प्राणों ने भोगा।
रो-रो कहते, जन्मान्तर में
कौन कहाँ पर होगा॥

पावस रोते ही बीता,
लो शीतकाल भी आया।
अपने प्रभाव से सबको
भय के ही बिना कँपाया॥

बहुरङ्ग फूल फूले थे।
हँसते थे खेत मटर के।
पीले-पीले फूलों से
थे पीत खेत अरहर के॥

यव - टूँड़ सुई - से निकले,
गड़ गये पिशुन - आँखों में।
गदराये खेत चने के,
थे चमक रहे लाखों में॥

नीले-नीले फूलों से
तीसो के खेत भरे थे।
उन खेतों के मेड़ों पर
फूलों के दल बिखरे थे॥

जाते दृग जिधर उधर ही
हरियाली ही हरियाली।
फल-भार-झुकीं सरसों के
पौदों की डाली-डाली

गमछे की पगड़ी बाँधे,
मुँह - बीच भुनी साठी ले,
जब कभी खड़ा डाँड़ों पर
होता किसान लाठी ले,

तब आँखें हँस देती थीं,
आनन्द-मगन हो जाता;
कुछ देर मेड़ पर बैठे
विरही का विरहा गाता॥

हिम लिये हवा बहती थी,
छोटा दिन हुआ सिकुड़कर।
लम्बी कुछ रात बना दी,
दिन रात धुएँ ने उड़कर॥

रानी के दुख से रजनी,
ओसों के मिस रोती थी।
वह गन्ने के पत्तों को
आँसू - जल से धोती थी॥

उसके आँसू के मोती,
पौदों के दल पर बिखरे।
नित उन्हें पोंछता सूरज,
कवि, और व्यथा कुछ लिख रे॥

पटहीन देख दुर्बल को
नभ की छाती फटती थी।
कौड़े-समीप पत्तों पर
भूखे ही निशि कटती थी॥

कुर्ते में सौ-सौ चीरें,
सीने को सुई न डोरा।
जाड़े के दिन का साथी,
हा, कुछ कोदो का पोरा॥

बीछी के शत डंकों-सी
तरु-डाल पात दहलाती।
शर-सदृश हवा जब चलती
गढ़ की भी देह कँपाती॥

हा, तब रानी अञ्चल में
अपना मुँह ढँक लेती थी।
कुछ देर सिसकियाँ भर-भर
हा हन्त! विलप लेती थी॥

वह कभी कभी कोने में,
प्रभु से बिनती करती थी।
मूर्च्छित होती, उठ जाती,
प्रतिक्षण जीती मरती थी॥

प्रभु, तू अन्तर्यामी है,
तू जान रहा दुख मेरा।
फिर क्यों देरी होती है,
असुरों ने मुझको घेरा॥

आतप की दोपहरी में,
पावस की घोर घटा में।
मैं तुझको ढूँढ़ रही हूँ,
सरदी की तुहिन-छटा में॥

इस लघु से लघु जीवन में,
पीड़ा भरकर क्या पाता।
इस अनाथिनी अबला को
प्रभु, क्यों इतना कलपाता॥

मैं सौ सीता-सी व्याकुल,
तू आज राम! बन आ जा।
पाञ्चाली विकल सभा में,
बनकर घनश्याम समा जा॥

मेरी पुकार नीरस है,
गज की पुकार में करुणा।
तब तो तू दौड़ पड़ा था,
लेकर आँखों में वरुणा॥

इस बार न जाने क्या है,
उर द्रवित न होता तेरा।
मेरी दुनिया चञ्चल है,
सौभाग्य विकल है मेरा॥

जब नहीं पिघलता उर है,
तब मत आ प्रभु, जाने दे।
अन्यायी जग के ऊपर,
मुझको भी मिट जाने दे॥

नश्वर यह सारा अग-जग,
नश्वर यह मेरा तन है।
है अर्थ जन्म का मरना,
संसृति का लक्ष्य निधन है॥

अब सबकी यही कथा है,
जब मुझे कभी मरना है,
तब क्यों न मरूँ जीने को,
माँ का भी ऋण भरना है ॥

मैं मर न सकूँगी मरकर,
मैं जी न सकूँगी जीकर।
इसलिए न अब जीना है,
मरना न गरल भी पीकर ॥

लाखों मरते, क्या दुनिया
उस मरने पर रोई है ?
मैं तो उस तरह मरूँगी,
जैसे न मरा कोई है ॥

प्रभु, यहाँ न दर्शन देता,
तो मैं ही आ जाऊँगी।
प्रभु, सुगम अनल के पथ से
मैं तुझको पा जाऊँगी ॥

पर रतन-विरह के दुख से
फिर हुई पद्मिनी मूर्च्छित।
तत्काल वहाँ पागल-सा
आ गया रतन व्याकुल-चित ॥

देखा उदास स्वामी को,
जब उसकी मूर्च्छा टूटी।
हा, रानी की आँखों से
आँसू की धारा फूटी ॥

झलके जलकण आँसू के,
पति के भी दृग-कोनों में।
दोनों के उर में ज्वाला,
व्रीड़ा उठती दोनों में ॥

क्षणभर तक रोकर पति ने
पत्नी - आँखों को खोला।
रानी को गोदी में ले,
रोते ही रोते बोला—

जितना मिलना है मिल लो,
जितना रोना है रो लो।
वैभव के सुख - सपनों को
आँसू के जल से धो लो॥

हम दोनों के खिलने का
वह मलय मिले न मिले अब।
हम दोनों के मिलने का
क्षण समय मिले न मिले अब॥

लेकर असंख्य सेनानी,
खिलजी ने घेरा डाला।
हा, चारो ओर किले के
भूतों ने डेरा डाला॥

पर हाँ, यह कह देता हूँ,
रावल डग भर न हिलेगा।
उस नीच अधम पापी को
तेरा दर्शन न मिलेगा॥

मेरे मरने के पहले
अभिमान न मर सकता है।
मेरे मिटने के पहले
सम्मान न मिट सकता है॥

इसलिए मुझे स्वीकृति दो,
मैं सजग करूँ वीरों को।
रक्षा - हित मिटनेवाले
गढ़ के उन रणधीरों को॥

महल से बिदा
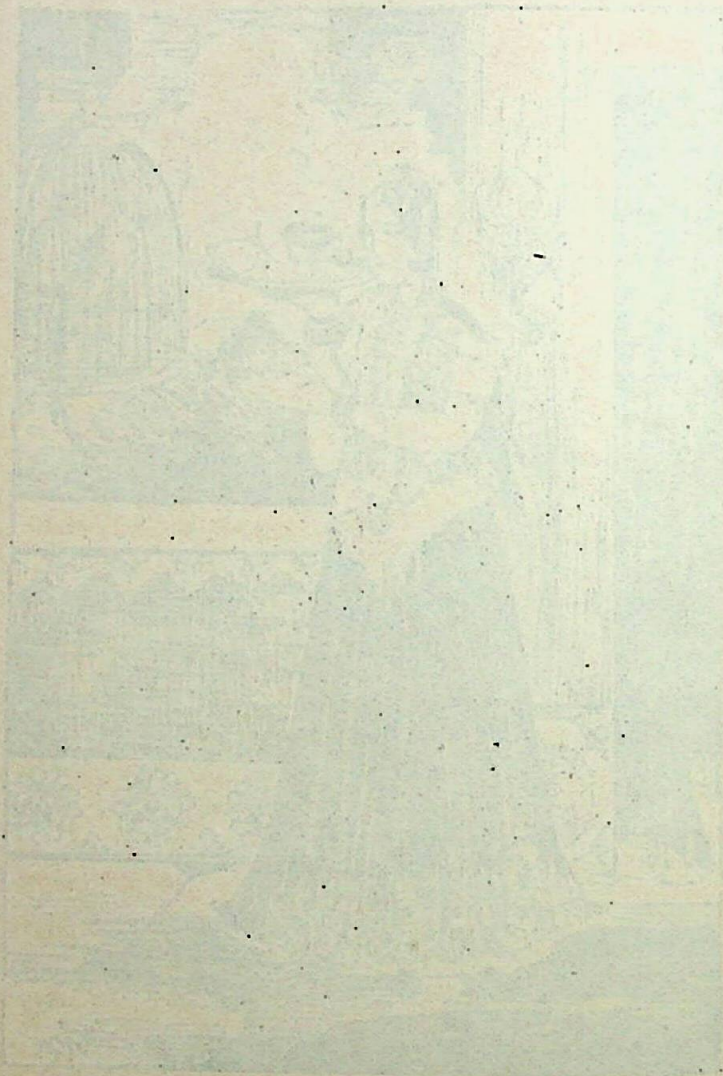
घायल हरिणी-सी रानी
हा! विकल भरी आँखों से।
रह गई देखती पति को,
अपनी उघरी आँखों से॥

उस विवश देखने का तू
कवि, क्या वर्णन करता है।
बेकार लेखनी से तू
कागद पर मसि भरता है॥

पति चला गया कह-सुनकर,
रो-रोकर शिर धुन-धुनकर।
पर देख रही थी रानी,
जाने पर भी पति गुनकर॥

उस महाशून्य में माना
पति के दर्शन होते थे।
आँखें तो रोती ही थीं,
तन-मन भी तो रोते थे॥

हा! उसी तरह पहरों तक,
वह पड़ी रही अवनी पर।
तन में चञ्चलता आयी,
वह उठी खेलकर जी पर॥

खिड़की से गढ़ के नीचे,
फूली आँखों से देखा।
थी खिंची मनुज-मुण्डों की
काली-सी भैरव रेखा॥

मिटने को और मिटाने को
सेना सजग बड़ी थी।
उन अगणित हथियारों में
मुँह बाये मौत खड़ी थी॥

रह सकी न रानी कातर,
साहस उर में भर आया।
उस पतिव्रता के तन में
सौ रवि का तेज समाया॥

युग-युग की सोई हिंसा,
तन-रोम-रोम से जागी।
धीरे से पूँछ दबाकर
सारी कातरता भागी॥

क्षण-क्षण अधरों का कम्पन,
क्षण-क्षण भावों का नर्त्तन।
क्षण-क्षण मुख की मुद्रा का
परिवर्त्तन पर परिवर्त्तन॥

भुजदण्ड तप्त लोहे-से,
अङ्गार चुए आँखों से।
पति के समीप उड़ती, पर
लाचार रही पाँखों से॥

फिर भी पावों की गति में,
आँधी की थी गति आई।
पति-पास चली एकाकी,
काली-सी ले अँगड़ाई॥

हा! अनभ्यास चलने से
बह चला लहू चरणों से।
हो गये लाल पथ-कण-कण,
निकले जब रक्त व्रणों से॥

पर क्षण भर में ही रानी,
स्वामी के पास खड़ी थी।
पति-साथ समर-साहस की
दीक्षा दे रही बड़ी थी॥

गढ़ के वासी तो पहले से
मर मिटने को कटिबद्ध रहे।
वैरी - उर - शोणित पीने को।।
उनके बरछे सन्नद्ध रहे।।

पर पथिक, देखकर रानी को
अधिकाधिक साहस-बल आया।
पर कोई बतला सकता, क्यों
उनकी आँखों में जल छाया।।

पथिक बोला—और आगे
की कहानी कह चलो तुम।
पूत गाथा की त्रिवेणी में
मुझे ले बह चलो तुम।।

जप पुजारी ने किया,
गाथा चली अविराम गति से।
वीर रानी की कथा में
रस बरसता था नियति से।।

•

बारहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर,
सारंग, काशी

मेष-संक्रान्ति
१९९९

रात आधी हो रही थी,
मौन दुनिया सो रही थी।
मोतियों के तरल दाने,
नियति तृण पर बो रही थी॥

घन कुहासा पड़ रहा था,
छिप गये तारे सुधाकर।
रात मानो सो गयी थी,
दीप आँचल से बुझाकर॥

नियति के दृग चाँद - सूरज
तिमिर - पलकों में छिपे थे।
गिरि - सरोवर सजल तरु - दल
सघन अलकों में छिपे थे॥

छा रही निस्तब्धता थी,
झींगुरों के बन्द गायन।
हो रहा था आज गढ़ पर
वीर - साहस का पलायन॥

देख गढ़ का शिथिल साहस,
पद्मिनी का गान गूँजा।
साथ ही गढ़ के हृदय में
देश का अभिमान गूँजा

वीर गढ़ पर वीर नगरी,
झुक रही पर आज पगरी।
प्राण-रुदन जगा रहा है,
वीरते, तू आज जग री॥

परिचिता मेवाड़ से है,
परिचिता इस प्राण से है।
परिचिता तू देश के,
प्रत्येक कण-पाषाण से है॥

परिचिता तू गुहिल-वंशज
क्षत्रियों के बाण से है।
परिचिता खरतर भयङ्कर
राजपूत-कृपाण से है।

सहचरी वरदान की है,
तू सखी बलिदान की है।
एक ही सहयोगिनी तू
दुर्ग के अभिमान की है॥

घोर दानवता-विपिन में,
क्रूर दावा-सी सुलग री।
वीर गढ़ पर वीर नगरी,
झुक रही पर आज पगरी॥

जिस तरह रावण-निधन-हित
जग उठी थी राम-उर में।
मौत बनकर कंस की तू
जिस तरह घनश्याम-उर में॥

राजपूतों के हृदय में
आज वैसे ही समा जा।
फूँक दे अरि-व्यूह आँखों
में चिता ले आज आ जा॥

प्राण हाथों पर लिये हैं,
गर्व से मस्तक उठाये।
जा न सकती आन चाहे,
आन पर ही जान जाये॥

धूल मिट्टी की सखी तू,
पद्मिनी के हृदय लग री।
वीर गढ़ पर वीर नगरी,
झुक रही पर आज पगरी॥

विजय की आशा न हो तो
भी न रुक, आ, मत लजा तू।
सखि, अमित निर्भीकता से
समर की भेरी बजा तू॥

एक ओर सुहागिनी
सिन्दूर की होली जलावें।
धधकती जलती चिता की
आग में चौताल गावें॥

एक ओर अबीर और गुलाल
हो नर-रक्त ही का।
हो न इस मेवाड़ का गत
फाग से यह फाग फीका॥

जन्म से है साथ तेरा,
तू न हम सबसे अलग री।
वीर गढ़ पर वीर नगरी,
झुक रही पर आज पगरी॥

मौन काली यामिनी में
गूँजता था गान का स्वर।
एक बिजली दौड़ती थी
दुर्ग-अन्तर में निरन्तर॥

जो जगे मधु गीत सुन-सुन
पैतरे दे-दे उछलते।
फेरते हथियार नभ में,
आग आँखों से उगलते॥

हो रहे सन्नद्ध प्रतिपल,
वीर मरने मारने को।
तीव्र तलवारें विकल थीं,
छपक शीश उतारने को॥

सो गये जो, स्वप्न ही में
वैरियों से लड़ रहे थे।
सूरमे अरि-व्यूह पर चढ़
बाढ़ सदृश उमड़ रहे थे॥

एक ओर अमर मृतों से
वीर धरती पट रही थी।
देख अत्याचार अरि का
गगन-छाती फट रही थी।

एक ओर चिता धधकती
व्योम से लपटें लिपटतीं।
रानियाँ घूँघट निकाले
हाथ जोड़े मौन जलतीं॥

दुर्ग जलतो पद्मिनी को
ले धँसा पाताल में था।
रक्त पी न डकार लेता,
रोष इतना काल में था॥

खुल गयीं आँखें अचानक
उठ गये योधा भभरकर।
एक क्षण रुक तन गये फिर
बाहुओं में शक्ति भरकर॥

आग आँखों में, भृकुटि में
कुटिलता, कम्पन अधर में।
ले बढ़े दो डग रुके, फिर
भाँजते करवाल कर में॥

पद्मिनी के गीत ने तो
भर दिया उत्साह जड़ में।
अग्रसर चेतन हुए तो क्या
हुए उन्मत्त रण में॥

इधर दुर्ग उबल रहा था,
वैरियों से जल रहा था।
आग अपने विवृत-मुख से
बार-बार उगल रहा था॥

उधर गढ़ के निकट ही
अव्यक्त कलकल हो रहा था।
भूँकते थे श्वान जगकर
गगन छलछल रो रहा था॥

उस अटल निस्तब्धता में
रात तक भी सो रही थी।
चींटियों की पाँत-सी
पाषाण सेना ढो रही थी॥

आज चित्तौड़ी शिखर
ऊँचा बनाया जा रहा था।
प्रात ही गढ़ फूँकने को
वह सजाया जा रहा था॥

बिछ रहे प्रस्तर शिखर पर,
बिछ रहे गिरि-खण्ड काले।
उस अँधेरी रात में भी,
दमकते खर कुन्त-भाले॥

नियम था, ऊपर धरा से
एक पत्थर जो चढ़ा दे।
ले सुरा, ले रतन, इसको
एक अंगुल भी बढ़ा दे॥

मधु - रतन के लोभ से
सब खेल प्राणों पर सिपाही।
ढो रहे गिरि-खण्ड आतुर,
ले रहे थे वाहवाही॥

दो पहर में पाहनों से
पट गया वह शिखर इतना।
वीरसू चित्तौड़ गढ़ का
था समुन्नत शृङ्ग जितना॥

तुरत बिछवायी गयीं
उस पर विकट तोपें सटाकर।
कँप उठा गढ़ सिहर थरथर,
हँस पड़ी काली ठठाकर॥

हाँ, न अब थी देर,
विहगों की अचानक नींद टूटी।
किरण - दर्शन के प्रथम ही,
निशि भगी काली - कलूटी॥

चहचहाकर उड़ गये
पक्षी, लगीं तोपें गरजने।
धाँय - धाँ - धाँ, धाँय - धाँ
की ध्वनि लगी रह - रह तरजने॥

नाद सुनकर राजपूतों
के हृदय की शक्ति जागी।
जग उठा उत्साह उर का,
मातृ - पद - अनुरक्ति जागी॥

पद्मिनी के पतिव्रत के
जल उठे अङ्गार तड़के।
मौत ध्वनि के साथ थिरकी,
सूरमों के रोम फड़के॥

पथिक, न यदि आख्यान कहूँ
तो क्या अब तुम्हें व्यथा होगी ?
निर्दय अरि की निर्दयता की
आगे दुखद कथा होगी॥

खिलजी - तोपों की ज्वाला से
जलकर नगर मसान हुआ।
रण के बाद चिताएँ धधकीं,
सारा गढ़ सुनसान हुआ॥

बोला पथिक पुजारी जी से
गाथा तो पूरी होगी।
सविनय कहने पर, कहने को
प्रभु को मजबूरी होगी॥

अधर - पँखुरियाँ डोलीं, थिरकी
गालों पर मुसुकान-प्रभा।
धीरे-धीरे चली कहानी,
दमकी पथिक-वदन पर भा॥

वीर पुजारी ने घुल-घुल,
ह्रस्व - दीर्घ - गति - यति-संकुल,
गढ़-विनाश की कथा कही,
सन्तानों की व्यथा कही॥

तेरहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर
सारंग, काशी

वसन्तपञ्चमी
१९९८

मुण्डमाल हर व्याली जय,
मनसिज - काल कपाली जय।
खप्परवाली काली जय,
जय काली, जय काली जय॥

एकलिंग रजधानी जय,
गढ़ की भूति भवानी जय।
अमर पद्मिनी रानी जय,
जय रानी, जय रानी जय॥

अट्टहासवाली की जय,
आज कटारों पर आ जा।
लौंग धार वाली की जय,
खर तलवारों पर आ जा।

महा प्रलयकारी की जय,
आज भुजाओं पर आ जा।
महा - महामारी की जय,
सङ्गर - भावों पर छा जा॥

भस्म - विदारक - रव की जय,
जन - हुङ्कारों से मिल जा।
महिष - मर्दनी - ध्वनि की जय,
धनु - टङ्कारों में खिल जा॥

सिंहद्वार के फाटक के
एकाएक खुले ताले।
पड़े अचानक फाटक पर
अरि के प्राणों के लाले॥

बोल-बोल जय सेनानी,
राजपूत सैनिक मानी।
हुं हुं हुंकृति कर अरि के,
दल पर झपटे अभिमानी॥

भिन्न प्रवाहों के मिलने
से जैसे जल में हलचल।
वीरों के भिड़ जाने से
वैसे ही थल में हलचल॥

लगे काटने वैरी-शिर,
शिर से पटने लगी मही।
पाषाणों में बल खाती,
गरम रक्त की धार बही॥

दोनों ओर प्रहारों से
क्षण-क्षण पिटने लगे बली।
तलवारों के वारों से
क्षण-क्षण मिटने लगे बली॥

लिपटे एक दूसरे से,
जैसे जंगल के नाहर।
हृदय रुधिरस्रावी निकले,
सैनिक के तन के बाहर॥

कोई घायल घूम गिरा,
कोई योधा झूम गिरा।
कोई दुर्जन सेनानी,
हथियारों को चूम गिरा॥

तलवारों की चोटों से
लहू-लुहान हुआ कोई ॥
भालों के विंध जाने से
गिर वेजान हुआ कोई ॥

आँखें फूटीं, अन्ध लड़े,
शिर कट गये, कवन्ध लड़े।
घमासान - कोलाहल में
रणधीरों के कन्ध लड़े ॥

क्षण लड़ गये कपालों से,
क्षण नङ्गी करवालों से।
क्षण भर वरछे - भालों से,
प्राण वचाये ढालों से ॥

वैरी - दल ने देखा जव
राजपूत वढ़ते आते।
गरज - गरज पग - पग निर्भय
नाहर - से चढ़ते आते ॥

तव साहस के साथ अड़ी,
खिलजी - सेना रण - माती।
तव शत-शत बन्दूकों से
चलीं गोलियाँ भन्नाती ॥

वरछे - भाले - तलवारों से
लोहा लेने वाले ॥
पुस्तैनी से उनसे ही,
शिर लेने देने वाले ॥

क्षण भर तो रुक गये विवश,
फिर न रुक सके मतवाले।
मर - मर मिट - मिट बढ़े अभय,
विजय - मन्त्र पढ़ने वाले ॥

सती सामने दीन बनी,
इससे तन को चाह न की।
गढ़ की रक्षा के आगे।
प्राणों की परवाह न की॥

तिल-तिल बढ़ने लगे वहाँ,
हर-हर पढ़ने लगे वहाँ।
बोल-बोल जय काली की,
मर-मर कढ़ने लगे वहाँ॥

सन-सन गोली आती थी,
सीने में घुस जाती थी।
राजपूत - सेना तो भी
आगे पैर बढ़ाती थी॥

सनन कण्ठ से निकल गयीं
सनन कलेजा पार हुईं।
गिरे सैकड़ों सेनानी,
सनन - सनन सौ बार हुईं॥

जैसे जल - जल मर मिटते,
दीप - शिखा पर परवाने।
पत्थर गिरने से जैसे,
मिटते खेतों के दाने॥

लाल बादलों से जैसे,
केलों पर ओले गिरते।
वैसे गढ़ के तरुणों पर
गोले पर गोले गिरते॥

मरते मिटते जाते थे,
गढ़ से उतरे आते थे।
एक सती के लिए विकल,
मर - मर बिखरे जाते थे॥

आन - बान कुल - गौरव पर
सङ्गर - दीवाने रहते।
वक्ष गोलियों के आगे
मरकर भी ताने रहते॥

पुश्तैनी यह व्रत उनका,
अर्चित गढ़ बलिदानों से।
मिट जायेंगे, पर न कभी
हार सुनेंगे कानों से॥

अङ्ग - अङ्ग से शोणित के
फौहारे थे छूट रहे।
गोले गिर - गिर वीरों के
प्राण बराबर लूट रहे॥

पर वैरी की सेना पर
सेना चढ़ती जाती थी।
बोल - बोल जय कल्याणी
पग - पग बढ़ती जाती थी॥

वैरी - दल के गोलों के
आघातों से गात भरे।
सङ्गर में घायल हो - हो
राणा के सुत सात मरे॥

लक्ष्मण का अन्तिम हीरा,
आठ बरस का वीर 'अजय'।
घायल हो बाहर निकला
गढ़ - सुरंग से धीर अभय॥

वीर - दुर्ग का ढालू पथ,
लाशों से था भरा हुआ॥
खप्परवाली काली के
हासों से था भरा हुआ॥

सिंहद्वार का तो तुमने,
सुना समर घनघोर पथिक !
हृदय दबाकर अब धीरे,
चलो दूसरी ओर पथिक !

पाठक, तुम भी साथ रहो,
जहाँ पथिक जाये, जाओ।
पर आगे की दुखद कथा,
पढ़ने का साहस लाओ।

चित्तौड़ी पर से तोपें,
धाँय - धाँय कर तरज रहीं।
बधिर बनाकर नभ को भी,
घोर नाद कर गरज रहीं॥

आँखमिचौनी खेल रही,
महामृत्यु गढ़ के ऊपर।
महाकाल का था ताण्डव,
काँप रहा था गढ़ थरथर॥

राजमहल के दीप बुझे,
और बुझ रहे थे प्रतिपल।
महाप्रलय का कोलाहल,
महानाश का वेग प्रबल॥

गड़ - गड़ तोपों की ध्वनि से,
महाक्रान्ति का आवाहन।
नग्न नृत्य विप्लव का था,
निर्दयता का निर्दयपन॥

सदा छूटते थे गोले,
सदा फूटते बम - गोले।
दुर्ग - हृदय पर गिर - गिरकर,
प्राण लूटते थे गोले॥

गोले फटे स्फुलिङ्ग उड़े,
आग लगी सामान दहे।
घोर नाद कर गड़-गड़-गड़,
गोले गिरे मकान ढहे॥

गोलों से पाषाण पिसे,
धूल उड़ी धुधुकार चली।
चले विकल उनचास पवन,
उठे बवण्डर गली-गली॥

धाँ-धाँ जलने लगे भवन,
गढ़ का दहन लगा होने।
एक दूसरा ही उलटे,
लंका-दहन लगा होने॥

तोपों की भीषण ध्वनि में,
गढ़-चीत्कार विलीन हुआ।
अरि-निष्ठुरता के आगे,
दुर्ग-विकल बलहीन हुआ॥

हय-शालाएँ धधक उठीं,
फूस सदृश गजशालाएँ।
धधके सन्ध्या-पाठ भवन,
धधक-धधक मखशालाएँ॥

जले औषधालय मन्दिर,
देव-मूत्तियाँ राजभवन।
जले पात से विद्यालय,
धाँय-धाँय कर उपवन वन॥

झूल रहा था दुर्ग-शिखर,
पर कोई हिंडोल न था।
डग-डग डोल रहा था गढ़,
पर कोई भूडोल न था॥

जंजीरों में कसे हुए
जल - जलकर मातंग मरे।
आगे - पीछे बँधे हुए
झुलसे खड़े तुरंग मरे।

गोले गिरे फटे गढ़ पर,
धूल - साथ ही धूम उड़े।
गोले गिरे हिले आलय,
एक बार भू चूम उड़े॥

अपने विह्वल लैरू को
दूध पिलाती गाय मरी।
अपने पुलकित छौने के
साथ मृगी असहाय मरी॥

जिसके विमल दूध से ही,
सन्तत मख का चरु बनता।
साथ यज्ञमण्डप के उस,
कामधेनु का था न पता॥

गढ़ पर गोला गोली थी,
त्राहि-त्राहि की बोली थी।
निर्दयता से खेल रही,
मौत रक्त से होली थी॥

चीख रही थी मानवता,
पर कोई सुनता न रहा।
रौंद रही थी दानवता,
शिर कोई धुनता न रहा॥

युग - युग से पूजा लेने-
वाली गढ़ की काली भी।
भक्त - रक्त की हा प्यासी
जननी कुन्तल - वाली भी॥

ध्वंस हो गया वीर नगर
गढ़ निर्जीव मसान हुआ।
भीषण गोलाबारी से
दुर्ग शिखर सुनसान हुआ॥

बीच-बीच में कभी-कभी,
देख दुर्दशा अरि निर्दय।
ताली दे-दे हा-हा-हा,
हँस भी पड़ता था निर्भय॥

तोपों के गर्जन में भी,
उसके अट्टहास के रव।
गढ़ के कानों में पड़ते,
जैसे घोर विपिन ने दव॥

बोला पथिक पुजारी से, क्या
विषधर सा डँसता भी था?
नगर फूँककर ताली दे क्या
हत्यारा हँसता भी था?

अभी-अभी उसकी पशुता का
मानव तो बदला लूँगा।
निष्ठुर के पाषाण-हृदय में
भाला-नोक हला दूँगा॥

यह कहकर वह उठा वेग से
उसे पुजारी ने रोका।
कहा, हुआ क्या तुमको यह,
आख्यान सात सौ वर्षों का॥

कहाँ अलाउद्दीन, और अब
कहाँ पद्मिनी रानी है।
अब तो उसकी निर्दयता की
केवल शेष कहानी है॥

पथिक झेंपकर बैठ गया, पर
वेग आँसुओं में आया।
तुरत पुजारी जी की भी
आँखों में खारा जल छाया॥

पहर भर के बाद रानी की कथा,
साथ पीड़ा को लिये आगे बढ़ी।
देख गढ़ का ध्वंस रानी प्रात ही,
साथ प्राची-ज्योति के आगे कढ़ी॥

चौदहवीं चिनगारी

विष्णु-मन्दिर,
द्रुमग्राम, आजमगढ़

शारदीय नवरात्र
१९९९

भागती निशि जा रही थी प्रात को,
हो गया था डर नगर की रात को।
काँपता था गगन, भूतल व्यग्र था,
मात करतीं गोलियाँ बरसात को॥

रात भर तोपें गरजती ही रहीं,
धूल - से उड़ते रहे गढ़ के भवन।
फूटते गोले, बमकती आग थी,
प्रात के सम जल रहे थे मनुज-तन

किरण फूटी, प्रात आया बिलखता,
नभ खगों की रुदन-ध्वनि से भर गया।
तोप - गर्जन रुदन - रव के सामने
रुक गया, पर काम अपना कर गया॥

दुर्ग शोणित से नहा-सा था गया,
वीथियों में रक्त के नाले बहे।
रुधिर की कल्लोलिनी में बाढ़ थी,
खेद, तो भी शत्रु-मुख काले रहे॥

वीर गढ़ वह गेरु-गिरि-सा था हुआ,
सुनहली किरणें पड़ीं उस पर सभय।
एक छवि वह भी हुई उस दुर्ग की,
देख जिसको काँप जाता था हृदय॥

गगनचुम्बी शिखर रवि के यान को,
रोकने के हित खड़ा था आज क्या?
सूर्य-कुल का दुर्ग इतना व्यग्र क्यों,
सौंपना था सूर्यवंशी ताज क्या ॥

दुर्ग पर सन्ध्या किसी जन ने न की,
हा, न पितरों के लिए तर्पण हुए।
आज सद्यःमृत पुरामृत के लिए,
आँसुओं के वारि ही अर्पण हुए ॥

मन्दिरों की आज पूजा बन्द थी,
इसलिए कि कहीं न उनका था पता।
आरती किस देव की हो, देव ही
जब दुखी हो, हो गये थे लापता ॥

बीत पायी थी न वेला प्रात की
खँडहरों से शेष जन निकले दुखी।
मथ रहा था एक हाहाकार उर,
आज सबकी वेदना थी बहुमुखी ॥

फाटकों के बन्द लौह किवाड़ थे,
इसलिए वैरी न भीतर आ सके।
द्वार दृढ़ दुर्भेद्य इतने थे कि वे
आज दिन भर में न तोड़े जा सके ॥

इसलिए सब एक टीले पर जुटे,
अब न वह पहला ललित दरबार था।
नारियाँ भीं थीं नरों के साथ ही,
सामने हँसता कुटिल संसार था ॥

एक ओर अनाथिनी सुकुमारियाँ,
एक ओर अनाथ नर बैठे सजल।
वेदना से अधमरे-से हो रहे,
मौन, मूर्च्छित, विनत, मनमारे सकल ॥

भाइयों की सामने लाशें पड़ीं,
फिर भला रोवें न वे तो क्या करें।
क्या न रोता धैर्य ? यदि होता वहाँ,
पथिक, हम भी आन पर कैसे मरें ॥

पर वदन पर एक ज्योति विराजती,
आन-बान सतीत्व-रक्षा की अमल।
परिजनों के शोक से तो व्यग्र थे,
पर हृदय में, वाहु में उत्साह-बल ॥

पक्षियों - से चित्त उनके उड़ रहे,
मिनकता कोई न था, चुपचाप थे।
अब न जीवन की उन्हें परवाह थी,
गरल-सम तन में भिने परिताप थे ॥

दासियों के साथ तब तक पद्मिनी,
तप्त जन-जन पर घटा-सी छा गयी।
खेलता था हास छवि के साथ ही,
नवविरह के गीत गाती आ गयी ॥

आज लज्जा से न घूँघट था कढ़ा,
आज नभ का चाँद भू पर आ गया ॥
गुदगुदी-सी सुखद शीतल चाँदनी,
दुर्ग तिनके का सहारा पा गया ॥

सजल-विह्वल-मौन अभिवादन किया,
मूक आशीर्वाद पाती आ गयी।
मर मिटे जो वीर थे चित्तौड़ के
फूल वह उन पर चढ़ाती आ गयी ॥

गीत में केवल न करुणा थी भरी,
झूमती थी वीरता भी गीत में।
शारदा का वह मधुर संगीत था,
धीरता - गंभीरता भी गीत में ॥

गीत-स्वर से ही जनों के हृदय के
हो गये दुख दूर साहस आ गया।
दिव्य दर्शन से सती के तो वहाँ
दूसरा ही रंग सब पर छा गया॥

उठ गये, बोले पुरुष जय-जय सती,
जननि तेरे पतिव्रत की जय सदा।
नारियों के करुण-स्वर ने भी कहा,
जय-सुहागिन, जय अभागिन, जय सदा॥

चौमुहानी पर खड़े हैं, देर से,
पथ दिखा हम चल पड़ें दृग मूँदकर।
हम अगम-आवर्त्त में हैं फँस गये,
किस तरह किस ओर आज बहें किधर॥

पतिव्रता पति के पदों की धूलि ले
और मन ही मन उन्हीं का ध्यान कर।
देख अपने प्राणियों को कह उठी,
धन्य हो तुम डट गये अभिमान पर॥

हृदय से चिन्ता निकालो, फेंक दो,
एक साहस और करना है तुम्हें।
हृदय में उत्साह भर लो, बढ़ चलो,
एक सागर और तरना है तुम्हें॥

यह तुम्हारा त्याग युग-युग तक अमर,
दुर्ग पर अनुराग युग-युग तक अमर।
वंश - गौरव को बचाने के लिए,
यह तुम्हारा याग युग-युग तक अमर॥

राजपूतों के लिए तो युद्ध ही,
शिवपुरी - वाराणसी - कैलास है।
स्वर्ग तक सीढ़ी लगा दो दुर्ग से,
साथ ही अब चल रहा रनिवास है॥

मुक्ति आगे से बुलाती है तुम्हें,
नरक मुँह वाये सजग पीछे खड़ा।
अब बताओ तो करोगे क्या भला,
मुक्ति-हित दोगे न क्या जीवन लड़ा।

दुर्ग की रक्षा न हो सकती कभी,
वैरियों का व्यूह क्या कट जायगा ?
तनिक सोचो तो महासागर भला,
एक मुट्ठी धूल से पट जायगा ?

विपति में कोई न साथी हो सका,
हाथ के हथियार हैं रूठे हुए।
रोम तन के भी गड़े काँटे हुए,
आज देवी - देवता झूठे हुए ॥

अन्न के भण्डार पर गोले-गिरे,
अब न खाने के लिए सामान हैं।
जल रहा खलिहान-सा यह दुर्ग है,
हाय, रहने के लिए न मकान हैं ॥

दीप मन्दिर का किसी के बुझ गया,
प्राण का धन चूर कितनों के यहाँ।
लाल गोदी से किसी का छिन गया,
धुल गये सिन्दू कितनों के यहाँ ॥

हा कहीं सौभाग्य-धन लूटा गया,
हा, किसी की कोख खाली हो गयी।
पैर से रौंदे गये यौवन कहीं,
आज गढ़ की क्रुद्ध काली हो गयी ॥

दुर्ग का वातावरण प्रतिकूल है,
नारियों का पातिव्रत भययुक्त है।
क्षत्रियों की आन है सन्देह में,
वंश-गौरव भी न चिन्ता-मुक्त है ॥

इसलिए मैंने यही निश्चय किया,
जल मरूँगी वंश के अभिमान पर।
साथ ही पतिदेव ने भी तय किया,
मर मिटेंगे गुहिल-कुल की आन पर॥

पद्मिनी की बात सुनकर नारियाँ,
रो पड़ीं, आँखें नरों की भी भरीं।
रोकने पर भी सती के अरुणतर
लोचनों के मेह से बूँदें झरीं॥

रुदन-स्वर के साथ ही सबने कहा,
जिधर दोनों हैं उधर ही प्राण हैं।
स्वर्ग है माता - पिता के पास ही,
लोक के कल्याण ही कल्याण हैं॥

प्रिय मधुर दरबारियों की बात सुन
पद्मिनी का हृदय दूना हो गया।
वीर गढ़ था एक अपनी शान का,
और वह उन्नत नमूना हो गया॥

पद्मिनी बोली तुरत उत्साह से,
धन्य हो, जीवन तुम्हारे धन्य हैं।
त्याग यह, यह राग अपने देश पर,
आन-बान सभी तुम्हारे धन्य हैं॥

अब न रंच विलम्ब होना चाहिए,
अब न अपना समय खोना चाहिए।
हृदय से भय - मोह - पीड़ा दूर कर
रक्त से भूतल भिगोना चाहिए॥

भूलकर भी मोह गढ़ का मत करो,
आज जौहर का भयङ्कर व्रत करो,
त्याग - विक्रम वीरता निःसीम कर
दुर्ग को कर्त्तव्य से उन्नत करो॥

आज जौहर की चिताएँ जल उठें,
आग की लपटें जला दें गगनतल।
सब दिशाएँ आग से जलने लगें,
चाँद-सूरज और तारे हों विकल॥

चढ़ चलें ऊपर शिखाएँ वह्नि की,
बादलों की देह भी छन-छन करे।
हम करें शृङ्गार पहनें आभरण,
और गा-गा अनल का अर्चन करें॥

हों सुहागिन या अभागिन बच्चियाँ,
रोहिणी, गौरी अनेक कुमारियाँ।
उस धधकती आग में कूदें मरें,
इस तरह से व्रत करें हम नारियाँ॥

और केसरिया पहनकर नर सभी
ले प्रखर नंगी दुधारी बढ़ चलें।
माँ बहन की ले चिता-रज शीश पर
खोल गढ़ के द्वार अरि पर चढ़ चलें॥

हो गया गढ़-नाश होगा और भी,
शक न इसमें, इसलिए छँट जायँ सब।
आन-रक्षा की न ओषधि दूसरी,
बैरियों को काटते कट जायँ सब॥

बोलकर जय राज-रानी की उठे,
शीश पर आदेश ले सब चल पड़े।
विरह के दुख तो वदन पर व्यक्त थे
पर हृदय पाषाण से भी थे कड़े॥

इसके बाद हुआ जो उसको
वही दुर्ग कर सकता था।
उसी दुर्ग में ही इतना बल,
गौरव पर मर सकता था॥

पथिक, न जग के इतिहासों में
वह आदर्श कहीं देखा।
किसी देश की किसी जाति में
यह व्रत-राज नहीं देखा॥

बोला पथिक, सती की गाथा
विस्तृत हो, जल्दी न करें।
पर हाँ, जप में देर लगाकर
मुझे न आतुर दीन करें॥

माला फेरी, चली कहानी,
आँखों में आया पानी।
जप-निषेध पर ध्यान न दे
निकली मधुमय भूषित वाणी॥

पन्द्रहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर, गोपाष्टमी,

सारंग, काशी। १९९९

घर - घर होने लगी तयारी,
धन्य सती, जौहर व्रत की।
पूजा होने लगी वहाँ पर,
रानी के पावन मत की॥

आतुर नर केसरिया बाना
धारण करने लगे वहाँ।
हाथों में नंगी तलवारें
लगीं खेलने जहाँ - तहाँ॥

अरि - जीवन पी - पीकर अपने
प्राण गवाँ देने वाले।
करने लगे प्रतीक्षा व्रत की,
गढ़ के सैनिक मतवाले॥

एक बार हुङ्कार करें तो
जग डगमग - डगमग होवे।
नभ - नक्षत्र गिरें भूतल पर,
भू जगमग - जगमग होवे॥

पर न अभी हुँकृति वेला थी,
देर शिवाराधन में थी।
सजती थीं सुन्दरियाँ गढ़ की,
देरी व्रत - साधन में थी॥

सजा रही थीं वीर नारियाँ,
अपने तन को फूलों से।
रेशम से मणिमय गहनों से
कंचन - कलित दुकूलों से,

सोने - चाँदी के कोमलतर
तारों से निर्मित सारी।
लाल-हरित सुरभित रेशम की
कसी कंचुकी मन - हारी॥

तेल फुलेल इतर से वासित
सुन्दरियों के केश बँधे।
केशों में सुहाग थे, उनमें
वेदों के उपदेश बँधे॥

चिकने भालों पर ईंगुर की
गोल - गोल बेंदी न्यारी।
निष्कलंक मुख की छवि से थी,
फीकी जग की छवि सारी॥

नीरस में भी रस भर देतीं,
आँजन से आँजी आँखें।
अन्तिम था श्रृङ्गार यही किस
दिन के लिए कमी राखें॥

कनक - फूल कानों में झलके
गल के गहनों के रुनझुन।
कटि में कटिकस कलित करधनी,
झनुन झुनुन-रुन-झनुन - झुनुन॥

सतियों के कोमल चरणों में
उठी महावर की लाली।
नूपुर - ध्वनि से भीत - चकित
कलरव - मय सन्ध्या मतवाली॥

आँख लगे न किसी की तन पर
इससे तिल की छाया थी।
अपलक रूप देखने को था
मनमोहन की काया थी॥

पहले तो उनके स्वागत में
सुर-सुन्दरियाँ थीं आतुर।
पर फिर उनके रूप देखकर
भरे अमित ईर्ष्या से उर॥

इन रूपों की होली होगी,
यही सोचकर सुखी हुयीं।
जौहर-व्रत के लिए विकल
इस ओर सरोरुहमुखी हुईं॥

जौहर की वेला समीप थी,
पर रानी में देरी थी।
सखियाँ उसे सजाती जातीं,
देवदूत की फेरी थी।

पावन तीर्थों के वासित जल
से नहलाया गया उसे।
देह पोंछकर नव रेशम का
वस्त्र पिन्हाया गया उसे॥

अगर-धूप के मधुर धूम से
बाल सुखाये गये घने।
कुञ्चित केशों में कुसुमों के
तेल लगाये गये बने॥

रेशम के चित्रित डोरों से
शिर के बिखरे बाल बँधे।
फूल त्रिवेणी के मुसकाये,
पन्नगियों के जाल बँधे॥

कमल-तन्तु के मृदु काँटों से
केश-राशि की छबि निखरी।
रतन-शलाका से अपने
हाथों से अपनी माँग भरी॥

लाल रङ्ग का बिन्दु भाल पर
आकर एकाकी छाया।
शारदीय राका के शशि पर
मङ्गल का तारा आया॥

नील रङ्ग से दोनों भौंहें
रँग दीं किसी सहेली ने।
किया रसीली आँखों में भी
अञ्जन किसी नवेली ने॥

गोरी - गोरी हथेलियों पर
अरुण कमल के चित्र बने
पति - पत्नी के मिलन - विरह के,
कर पर चित्र - विचित्र बने॥

किसी सखी के कलित करों से
रँगे गये नख रानी के।
रूई के फाहों से तन में
लगे फुलेल सयानी के॥

भरी महावर से हाथों में
हीरे की प्याली दमकी।
फूलों से कोमल रानी के
पैरों में लाली दमकी॥

दोनों पाँवों पर जौहर की
ज्वाला की तसवीर बनी।
क्रूर चिता की लपटों में भी
सुकुमारी गम्भीर बनी॥

चारो ओर चिता के परिजन
चरण - चित्र में खड़े हुए।
बोल सके न तनिक पीड़ा से
यद्यपि विह्वल बड़े हुए॥

कहीं न अङ्ग छिले फूलों से,
हलके फूलों के गहने।
सखियों के कहने सुनने पर
किसी तरह तन पर पहने॥

रानी के तन पर सजने को,
असमय में ही फूल खिले।
मुझे सजा लो, मुझे सजा लो,
वृन्त - वृन्त के फूल हिले॥

झूले पुलकित कानों में दो
मौलसिरी के फूल सुघर।
मुकुर - कपोलों में, उनके
प्रतिबिम्ब झलमले इधर-उधर॥

गौर सलोनी नासा पर नव
सोनजुही की कनक-कली।
पहचानी जाती न कभी वह,
अगर वहाँ उड़ते न अली॥

अरुण अधर में प्रतिबिम्बित हो
जूही की झुलनी झूली।
वेसर - पद - उन्मन जूही पर
कली मालती की फूली॥

अड़हुल के फूलों का गजरा,
पारिजात की ओर लता-सी,
झुकी रसा की माला थी।
कुसुम - भार से बाला थी॥

रजनीगन्धा की कलियों की
कलित करधनी झलर - मलर।
फूलों के दल से भी कोमल
रानी की छवि जगर - मगर॥

चम्पा और चमेली के
फूलों के पायल मधुर - मधुर।
मधुपों के मधु - गुञ्जन - मय
वेला की कलियों के नूपुर॥

फूल - लदी अल्हड़ लतिका - सी,
तारों - भरी त्रियामा - सी।
रानी जी छवि बिखर रही थी,
कनक-चुनीमय - तामा सी॥

रानी का वह रूप देखकर
लगती शची पुरानी थी।
रति की कौन कहे, चिन्ताकुल
बानी - रमा - भवानी थी॥

उसे सजाकर सहेलियों ने
रखा सामने मुकुर विमल।
देख ललित शृङ्गार हुई वह
रतन - मिलन के लिए विकल॥

पर तत्क्षण दर्पण में ही,
जौहर - व्रत की झाँकी देखी।
रावल -गौरव को चिन्तित,
साकार व्यथा माँ की देखी॥

और तभी जौहर - व्रत - सूचक
शङ्खों के निर्घोष हुए।
पुलकित सतियों के अन्तर के
व्यक्त वदन पर रोष हुए॥

उठो महारानी सखियों से
अर्चन की थाली माँगी।
पूजा - पात्र कमण्डलु माँगा,
फूलों की डाली माँगी॥

नीलम - थाली में पल्लव - दल,
चन्दन, अक्षत, घी, आये।
धूप - दीप, दूर्वा - हल्दी, मधु,
पुंगी - पान, दही आये॥

पञ्चपात्र मणि - आचमनी के
साथ कमण्डलु गङ्गा - जल।
रतन - डोलची में गजरे, फल-
फूल, साथ मधुपों का दल॥

रानी को नवस्नात देह की
सुरभि उठी कोने - कोने।
अर्चन के सामान लिये
सखियाँ भी चलीं सती होने॥

देह - सुरभि के साथ सुरभि
गहनों की गमकी मतवाली।
चारो ओर महारानी के,
मधु - रस - पायी मधुपाली॥

सखियाँ चँवर डुलाती जातीं,
पर न मानते ढीठ भ्रमर।
रानी स्वयं उड़ाती रहती,
पर न दिखाते पीठ भ्रमर॥

पथ की ओर गमन करने के
लिए सती की दृष्टि उठी।
हिला दुर्ग, हिल उठी मेदिनी,
हिला गगन, हिल सृष्टि उठी॥

अनायास पशु-पक्षी की भी
आकुल आँखें भर आयीं।
सिहर उठी रानी भी, सखियाँ
सान्ध्य-किरण-सी मुरझायीं ॥

अब पथिक, न मुझसे आगे
आख्यान कहा जाता है।
बाहर न सूझती दुनिया,
भीतर जी अकुलाता है ॥

कह इतनी कथा पथिक से,
पागल हो गया पुजारी।
लोचन-कोनों से निकलीं,
दो जल धाराएँ खारी ॥

आकुल हो गया पथिक भी,
सुध रही न उसको तन की।
उसके नयनों से निकली,
आँसू बन पीड़ा मन की ॥

पहरों तक दोनों रोये,
हब चली कथा रानी की।
दोनों रुक-रुक जाते थे,
कह विकल व्यथा रानी की ॥

सोलहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर सौम्यासितत्रयोदशी

सारंग, काशी १९९९

पूजा की थाली लेकर
रानी पति - सन्निधि आयी।
क्षण रही देखती पति को,
भीतर की रोक रुलाई॥

तो भी चारो पलकों में
अन्तर् की पीड़ा झलकी।
अन्तिम जीवन की करुणा
आँखों के पथ से छलकी॥

दिशि - दिशि छा गया अँधेरा,
चिनगी - सी गिरी व्रणों पर।
ताड़ित सरसों की डाली-
सी गिरी रतन - चरणों पर॥

दोनों प्राणों की स्मृतियाँ,
साकार हुईं रोने से।
यौवन की मादकताएँ
जल हुईं विकल होने से॥

था विरह मिलन में आया,
ज्वाला उठती प्राणों में।
रोता था राजमहल भी,
पीड़ा थी पाषाणों में॥

थीं सजल मकड़ियाँ घर की,
भूलीं जालों का बुनना।
छिपकलियों का जारी था,
मरकत - छत पर शिर धुनना॥

कल दिन में कुररी रोयी,
रजनी में कागा बोला।
टीले पर कुक्कुर रोये,
भय का भी आसन डोला॥

दिनमणि की व्याकुल किरणें,
खिड़की के पथ से आकर।
दम्पति - चरणों से लिपटीं,
अन्तर की व्यथा जगाकर॥

सुकुमार सरस - महुए - सी,
अलसी - फूलों - सी हलकी।
दुख - भार - विकल रानी थी,
ले बाढ़ दृगों में जल की॥

क्षण भीत मृगी - सी काँपी,
क्षण जलद - घटा - सी रोयी।
क्षण जगी, अचेत हुई क्षण,
कोमल चरणों पर सोयी॥

क्षण मुख निहारती पति का,
क्षण मौन सोचती रानी।
आँचल से पति के आँसू
क्षण मौन पोंछती रानी॥

क्षणभर नारीत्व जगाकर
पति के चरणों को भेंटा।
क्षणभर उन मृदुल पदों को
बाहों में पुलक लपेटा॥

सहसा पावन जौहर की
तसवीर सामने आयी।
काँपी करुणा-प्रतिमाएँ
उर-व्यथा वदन पर छायी॥

पर क्रम-क्रम से दोनों में
उत्साहित तेज समाया।
तन-मन की पीड़ा डुबकी,
अन्तर में साहस आया॥

हिल गया मुरेठा शिर का
पुलकित रोमावलि तन की
तन गया वक्ष, केसरिया
नव अचकन फटी रतन की॥

हो गये लाल रावल की
भींगी आँखों के डोरे।
हो गये गरम-लोहे से
पलकों के रक्त कटोरे॥

तलवार म्यान से निकली
चमचमा उठी मतवाली।
असि-चकाचौंध के भीतर
थी छिपी किले की काली॥

बोला, न प्रिये देरी कर,
व्रत-भङ्ग न होने पाये।
जो हो पर जौहर-व्रत का
आदर्श न खोने पाये॥

मैं चला, साथ सखियों के
तू भी धीरे-धीरे चल।
मैं मिटूँ और तू भी जब
जौहर की ज्वाला में जल॥

यह कह अपनी प्यारी से,
यह कह अपने प्राणी से।
उठ गया रतन आसन से,
यह कह अपनी रानी से॥

घन फटा मोह-माया का,
रानी ने भी दृग खोले।
पर ममता झाँक रही थी,
अन्तर में करुणा को ले॥

रानी ने पति-पूजा की,
चन्दन-अक्षत-बन्दन से।
की पुलक आरती विह्वल,
की विनय मूक-क्रन्दन से।

थाली सेले अड़हुल की
माला पति को पहनाई।
पद-पंकज छू-छू उनके,
की नित के लिए विदाई॥

पति चला गया डग भरता,
चमकाता असि का पानी।
अपने उर के राजा को,
रह गयी देखती रानी॥

चल पड़ी महारानी भी,
गहनों के फूल गिराती।
पद-चिह्न-चिह्न पर पावन,
पद्मेश्वर तीर्थ बनाती॥

पिंजर के शुक-शारी ने
बन विकल फड़फड़ाये पर।
दो-चार हरित डैने भी
मरकत-गच पर आये झर॥

आँखें भरकर शुक बोला,
अपनी प्यारी शारी से।
नारी हो, कहने का है
अधिकार तुम्हें नारी से॥

तुम कहो कि देख किसे हम
उत्साहित हो-हो बोलें।
तुम कहो कि किसका स्वर ले
बोली में मिसरी घोलें॥

हम सीता राम रमैया,
किसके स्वर को दुहरायें।
हम राधे-श्याम कन्हैया,
किस स्वर से रटन लगायें॥

तुम कहो कि पिंजर में क्या
अब भी हम बंद रहेंगे।
जौहर के अवसर पर भी
बन्दी हम मन्द रहेंगे॥

तुम कहो द्वार पिंजड़े का
अब भी तो कोई खोले।
इस पुण्य-पर्व पर हम भी
वैकुण्ठ चलें तुमको ले॥

यह कहा, और पलकों के
अटके जल गिरे धरा पर।
शारी की गीली आँखें
तो झरने लगीं झराझर॥

शुक की बातें सुन रानी
ने अपने कम्पित कर से।
खोला किंवार पिंजर का,
निकले विहंग दो फर से॥

खग गिरे सती-चरणों पर
आँखों से बरसा पानी।
दोनों की विह्वल भाषा,
दोनों की गद्‌गद वाणी ॥

रानी के विकल नयन-मृग,
गहरे पानी में डूबे।
हो गये शिथिल क्षणभर तक,
जौहर के सब मनसूबे ॥

कोमल कर से डैनों को
सहलाकर बोली रानी।
उठ जा तू मेरे सुगना,
उठ जा तू सुगी सयानी ॥

उठ जा तू मेरे तोता,
उठ जा तू मैना मेरी।
हो रहे मलिन डैने हैं,
हो रही मुझे भी देरी ॥

उड़ वन्य-शुकों में मिल जा,
जा भूल व्यथा पिंजड़े की।
सुगनों की पंचायत में
कहना न कथा पिंजड़े की ॥

रानी थी उन्हें मनाती,
पर विकल विहग होते थे।
रानी की बातें सुन-सुन
दोनों बेसुध रोते थे ॥

पद पद जौहर-ज्वाला की
तसवीर देख अकुलाये।
जलती रानी को देखा,
खग शिथिल-अङ्ग मुरझाये ॥

दम तोड़े तड़प-तड़पकर,
मृदु चरणों की काशी में।
पा गये मुक्ति, तप होगा
क्या इतना संन्यासी में॥

यह देख दशा दम्पति की
थी भीत चकित महरानी।
बिखरे पंखों पर आँखें,
आँखों में छल-छल पानी॥

रो एक सहेली बोली,
सखि, मृगछौना रोता है।
भोली-भोली आँखों के
आँसू से तन धोता है॥

हो दशा न शुकदम्पति की,
इस नन्हे बालहिरन की!
सखि, बड़ी-बड़ी आँखों से
पीड़ा बतलाता मन की॥

यह लाल दूसरे का था,
पर लाल बनाया अपना।
सखि, क्या इसकी उस माँ का
सब पर पड़ रहा कलपना॥

सखि, बिना खिलाये इसको
तू कभी नहीं खाती थी।
सोता था, तो सोती थी,
पहले ही जग जाती थी॥

हो गयी मलिन रोमावलि,
तो लोचन भर जाते थे।
रवि-कर से कुम्हला जाता,
तो प्राण तड़प जाते थे॥

इस लघु मृगछौने ने मन
रावल का भी जीता है।
तू इसे देख जीती है,
यह तुझे देख जीता है॥

अपने हाथों से बुन-बुन
अपने हाथों से सी-सी।
सखि, वसन इसे पहनाती,
आती थी इसे हँसी-सी॥

इसकी वह हँसी कहाँ है,
सखि, कहाँ गया भोलापन।
क्या छिदा व्यथा-बरमी से
जूही के फूलों-सा मन॥

अब इसकी आज मलिनता
देखी न तनिक जाती है।
सखि, देख इसे अकुलाया
मेरी फटती छाती है॥

रानी धीरे से बोली,
चल राजमहल के बाहर।
सखि, देख न सकती इसकी
आँखों का झरना झर-झर॥

सखियों के बीच महल के
बाहर कृश रानी आयी।
नत शीश उठा देखा तो
सन्ध्या-सी फिर मुरझायी॥

हाँ, राजमहल के बाहर
भी बढ़ी वेदना दूनी।
बोली वह बिलख सखी से,
हा, पिया अटरिया सूनी॥

हा, विदा महलिया पिय की,
हा, विदा पलँगिया पिय की।
हा, विदा मिलन की रतियाँ,
हा, विदा सेजरिया पिय की॥

हा, विदा प्यार प्रियतम के,
हा, विदा दुलार स्वजन के।
हा, विदा मनोहर पावन
रज-कण प्रिय-नलिन-चरण के॥

मुसकान विदा प्रियतम की
मधुहास विदा प्रियतम के।
प्रियतम की सेवा के दिन,
मधुमास विदा प्रियतम के॥

हा, विदा सती की गाथा,
आख्यान विदा - सीता के।
नित के स्वाध्याय विदा अब,
हा, ज्ञान विदा गीता के॥

कहते ही बाढ़ दृगों में,
तन भर में सिहरन - कम्पन।
हा, रुकी सजल वाणी भी,
रुँध गया गला, मन उन्मन॥

केवल अञ्चल - कोना धर
अभिवादन किया महल का।
कुल बात कही मन ही मन,
कर उठा फूल - सा हलका॥

मन्दिर की ओर चली फिर,
पथ पर डगमग पग धरती।
जल से नत घनमण्डल में
विद्युज्ज्वाला - सी बरती॥

सखियों के अन्तर में भी
था भरा व्यथा का सागर।
थकते न कभी अञ्चल पर,
लोचन-घन जल बरसाकर॥

सखियों के साथ चली वह,
धीरे - धीरे सुकुमारी।
तारों के साथ सजल क्या।
विधु का छवि चलती न्यारी॥

पथिक साथियों को ले रावल
इधर चिता सजवाता था।
रह-रहकर जौहर - व्रत - सूचक
वाजों को बजवाता था॥

ब्रह्मयोनि की आकृति की ही।
चिता बनायी जाती थी।
जौहर - व्रत की वीर गीतिका
स्वर से गायी जाती थी॥

वेदी बनी कनक अरनी से
सुघर बनाया गया उसे।
कामधेनु के पावन गोमय
से लिपवाया गया उसे॥

उस पर काठ बिछे पावनतर
जो गौरव नन्दन के थे।
चारो ओर मलय के वल्लों
पर कुन्दे चन्दन के थे।

अगर - धूप घृतमय गुग्गुल के
भुरके भुरकाये जाते।
उन सूखे काठों पर घी के
बर्तन ढरकाये जाते॥

हीरक - थालों में सुरभित
शाकल्य बनाये जाते थे।
अनल - समर्चन को कुश, पल्लव,
दही सजाये जाते थे॥

एक ओर बन रहा चौतरा,
तन - तन पर श्रम की बूँदें।
ताकि रानियाँ उस पर चढ़कर
जौहर - ज्वाला में कूदें॥

मन्त्रमुग्ध था पथिक देखता,
वदन पुजारी का विह्वल।
सतत बरौनी के ऊपर से
पानी बहता था छल - छल॥

सजल पुजारी की वाणी भी,
धीरे - धीरे मन्द हुई।
कुछ देरी के लिए सती की
करुण - कहानी बन्द हुई॥

सत्रहवीं चिनगारी

कुञ्ज-निवास, | मकर-संक्रान्ति
खजुरी (आजमगढ़) | १९९९

अचल अर्वली की अवली में
दुर्ग - शिखर था एकाकी।
नभ को छूने में उसको था
कहने ही भर को बाकी॥

दिन में दिनकर की किरणों से,
निशि में नभ के तारों से।
युग-युग से वह खेल रहा था,
निशि - वासर अङ्गारों से॥

चरण रसातल के सीने पर;
उन्नत मस्तक अम्बर में।
कसमस अङ्ग दिशाओं में थे,
पाहन पानी अन्तर में॥

उसके तरु कम्पित दल के मिस
चँवर डुलाया करते थे।
गौरव-रक्षा के हित पाहन
प्राण घुलाया करते थे॥

गले लगाकर उसे चाँदनी
रात-रात भर सोती थी।
अमा-अङ्क में ले दुलार से
ओसों के मिस रोती थी॥

उर में झञ्झावात छिपाये
मौन-मौन कुछ बोल रहा।
अपने सेर-बटखरों से वह
मानवता को तोल रहा॥

अब भी तो भग्नावशेष वह
पावन कथा सुनाता है।
कान चाहिए सुनने को,
रानी की व्यथा बताता है॥

हाँ, तो गढ़ पर वीर नगर था,
विमल संगमरमर के घर।
टँगे द्वार पर भाले-बरछे,
वीर-ध्वजा उड़ती फरफर॥

पुर के चारो ओर राजपथ,
एक वृत्त था बना हुआ।
वृत्त-बिन्दु पर पथ मिलते,
उस पर वितान था तना हुआ॥

पथ के अगल-बगल वीरों के
धवल मनोहर धाम बने।
धाम-कलश अभिराम बने,
भीतर सुरभित आराम बने॥

मुखर चौमुहानी पर चञ्चल
सैनिक एक खड़ा रहता।
पथ बतलाया करता था,
पथिकों से सजग बड़ा रहता॥

उसी चौमुहानी से सर पर
एक मनोहर पथ जाता।
कभी-कभी उस पर रावल का
प्रजाभिनन्दित रथ जाता॥

सर के भीटों पर शीशम - तरु
आम - नीम की छाया थी।
दिन के डर से तरु के नीचे
सोयी तम की काया थी॥

विटपों की डाली - डाली पर
विह्वल खग कूँजा करते।
विहग-स्वरों में मिल - मिलकर
मधुपों के स्वर गूँजा करते॥

चिकने - चिकने पाषाणों से
सर के चारों घाट बने।
पशुओं को भी जल पीने
के लिए मनोहर बाट बने॥

स्वर्ग - सीढ़ियों से भी सुन्दर
बनी सीढ़ियाँ सर की थीं।
जल पीने के लिए तृषातुर
एक - एक पर लरकी थीं॥

जितनी भू से नभ की दूरी,
उतनी उसकी गहराई।
तो भी उसमें श्वेत अरुण
जलजातों की थी अधिकाई॥

यमुना के जल से भी निर्मल,
पावन गङ्गा - जल से भी।
लघु-लघु लोल लहरियाँ उठतीं,
जल चल, चलदल-दल से भी॥

अचपल जल के दर्पण में तरु
झाँक - झाँक मुख देख रहे।
प्रतिबिम्बित हो या सर के
अन्तर के सुख - दुख देख रहे॥

सरोजिनी के अधर चूमकर
दिन में दिनकर तर जाता।
शशि - तारों के साथ रात को
जल में गगन उतर आता॥

पर जब-जब मारुत-कर-कम्पित
जल की चादर हिल उठती।
तब-तब सर-सरसीरुह वीरुध
की शोभा खिल-खिल उठती॥

हिलते कमल, पराग बिखरते,
सुरभि हवा ले उड़ जाती।
कमल - कोष से उड़ मधुपावलि
विरह - गीत गुन - गुन गाती॥

झूम - झूम उठते तट के तरु,
गले पवन को लगा - लगा।
दल से दल मिल मिल गा उठते
राग रागिनी जगा - जगा॥

चारों कोनों पर नीलम के
पीनकाय गजराज बने।
उन पर कर में लिये बँसुरिया
बाँके - से ब्रजराज बने॥

वाल्मीकि - आश्रम - समीप
राघव - परित्यक्ता सीता थी।
विरहाकुल दमयन्ती की
पाहन की मूर्ति पुनीता थी॥

दशमुख रावण की प्रतिमा
बीसों कर में तलवार लिये।
देव - दैवकी के समीप
बैठा था कंस कटार लिये।

सावित्री की भींगी गोदी
में मृत सत्यवान बने।
भैंसे पर यमराज, दाहिने
एकलिङ्ग भगवान बने॥

सर के चारों ओर मनोहर
ललित और भी काम बने।
लिये वानरों की सेना
पुष्पक विमान पर राम बने॥

यन्त्र किसी ने खोल दिया,
छर - छर - छर फौवारे छूटे।
बूँद - बूँद जल छहर उठे, या
अम्बर के तारे टूटे॥

चले फुहारे डाल-डाल से,
पात पात से जल बरसे।
देख फुहारों का जल-वर्षण,
सावन के बादल तरसे॥

गज हिल-हिल सूँड़ों से पानी
लगे छिड़कने छहर-छहर।
बजी बाँसुरी मोहन की, जब
छिद्रों से जल चले लहर॥

प्रतिमा हिली, सजल सीता की
आँखों से सरके आँसू।
विरह - विकल दमयन्ती के
नयनों से भी ढरके आँसू॥

चले फुहारे दशो मुँहों से,
बीसो खर तलवारों से।
मुखरित सर, कम्पित रावण
की प्रतिमा की ललकारों से॥

देव - देवकी के नयनों के
निर्झर से झर - झर पानी।
हिली कंस की मूर्त्ति, हिली
खरतर कटार, खर-खर पानी॥

कंस - हाथ से छूट व्योम में
उड़ी भवानी पानी की।
निष्ठुर की पाहन-प्रतिमा में
भी हलचल नभ - वाणी की॥

बरस पड़ीं सावित्री की
आँखें, मृत, सत्यावान चपल।
गिरे सतत यम के हाथों से
एकलिङ्ग के ऊपर जल॥

हिला विमान वानरों को
आँखों से अश्रु-उफान चले।
राघव के चक्रीकृत धनु से
रह-रह जल के बाण चले॥

सर के ही जल घूम मूर्त्तियों
में फिर सर में आ जाते।
अलग ब्रह्म से हो, उसमें ही
जैसे जीव समा जाते॥

उसी मनोहर सर के दक्षिण
शिव का मन्दिर सजा - बजा।
कंचन के त्रिशूल से लगकर
फहर रही थी रक्त-ध्वजा॥

रतन-जटित अर्घे के अन्दर
जलती छवि-ज्वाला हर की।
एकादश रुद्रों के बीच
प्रतिष्ठित मूर्ति दिगम्बर की॥

शिव - समीप हो सती भवानी
मुँह पर घूँघट किये हुए
कंचन - मृगछाला पर बैठीं,
गोदी में सुत लिये हुए ॥

अगल - बगल भीतर - बाहर
चाँदी के घंटे टँगे हुए।
मन्दिर के चारो कोनों पर
रखे नगारे रँगे हुए ॥

घरी - घंट थे, अनहद रव भी,
जिनके रव से छके हुए।
झाँझ और करताल रखे थे,
रखे दमामे ढके हुए ॥

जलता था दीपक अखण्ड वह,
शिखा - धूम - पाँती न हटी।
युग-युग से था दीप जल रहा,
घी न घटा, बाती न घटी ॥

आँधी और बवंडर आये,
कनक - दीप पर बुझ सका।
आज न जाने क्या होगा,
तूफानी अभी कर कुछ न सका ॥

निशिदिन सहनाई बजती थी,
नौबत - स्वर में असुरारी।
राग - राग के शब्द - शब्द में,
हर - हर शंकर त्रिपुरारी ॥

माला फूल चढ़े दम्पति पर,
मधुप फूल पर झूम उड़े ॥
मलय-त्रिपुण्ड शम्भु-प्रतिमा पर,
अगर - धूप के धूम उड़े ॥

दमक रहे शत - शत प्रकाश से
हीरक कोने - कोने के।
मन्दिर के मणिकान्त द्वार पर
नन्दी बैठे सोने के॥

चारो द्वारों के परदों में
लगी मोतियों की झालर।
मन्दिर के बाहर - भीतर सब
ओर उमाशंकर हर - हर॥

जिसने दर्शन किये मूर्ति के,
उसकी सारी भीति भगी।
आज उसी मन्दिर के आँगन
में भक्तों की भीड़ लगी॥

सन्ध्या की पूजा न हुई थी,
सूरज छिपता जाता था।
धीरे - धीरे तम - स्याही से
भूतल लिपता जाता था॥

उसी अमर गोधूली में,
सर के तट पर रानी आयी।
देख सती का रूप अचानक,
पङ्कज - माला मुरझायी॥

पश्चिमीय सागर में जैसे
रवि की किरण उतरती थी।
वैसे ही रानी भी सर में
धूमिल - बदन उतरती थी॥

उतर सजल सीढ़ी को पद से
शोभित किया सयानी ने।
जल न सके रानी, इससे
रख लिया हृदय में पानी ने॥

विश्ववन्द्य अपने चरणों से
पावन कर सर का पानी!
अस्थिर अरुण सरोज उगाती
चढ़ी सीढ़ियों पर रानी ॥

जिस सीढ़ी पर पद रख देती
वह पावन हो जाती थी।
पाहन - जनम सफल हो जाता,
पुलकित तन हो जाती थी ॥

सर के कमलों को चिन्तित कर
हाथ - पाँव धो - धो जल में
चलीं सजल सखियाँ भी पीछे,
चाँद छिपाकर अञ्चल में ॥

मधुर - राग से रानी कहती,
सखियाँ दुहराती मधु - स्वर।
हर - हर शंकर हर - हर शंकर,
हर - हर शंकर हर शंकर,

जय असुरारी जय त्रिपुरारी,
विश्वम्भर जय हर शंकर।
हर - हर शंकर हर-हर शंकर,
हर - हर शंकर हर शंकर ॥

उमारमण जय अलख दिगम्बर
शम्बरारि—हर प्रलयंकर।
हर - हर शंकर हर - हर शंकर,
हर - हर शंकर हर शंकर ॥

उँगली धर - धरकर सीढ़ी पर
रो - रोकर चढ़नेवाली।
शिव - मन्दिर की ओर व्यथा से
उझक - उझक बढ़नेवाली ॥

नन्हीं - नन्हीं कन्याएँ भी
कहती जातीं हल छंकल
हल-हल छंकल, हल-हल छंकल,
हल - हल छंकल हल छंकल ॥

गूँज उठी कोने कोने में,
हर - हर शंकर की वाणी।
पग पग पर शिव शंकर भजती,
मन्दिर पर पहुँची रानी ॥

किया दूर ही से अभिवादन
शिव - प्रतिमा का, रानी ने।
और सती के चरणों पर
गिरकर रो दिया सयानी ने ॥

पुलकित सतियों की आँखों से
भी अविराम चले आँसू।
पाषाणों की युगल मूर्तियों
से भी वह निकले आँसू ॥

क्षण भर बाद उठी महरानी,
पुलक रोम तन के चमके।
मोमबत्तियाँ जलीं, सौगुने
मन्दिर के हीरे दमके ॥

किया समर्चन सती-चरण का,
समय बिताया रोने में।
चन्दन - अक्षत - फूल चढ़ाये,
दीप जलाया कोने में ॥

अगर - धूप की अगियारी दी,
हार पिन्हाया देवी को।
आँसू के जल के दर्पण में,
प्यार दिखाया देवी को ॥

भर - भर माँग भवानी की,
सतियों ने रखा सिंधोरों को।
जिनसे शिर के बाल बँधे थे
रखा पास उन डोरों को॥

घी - कपूर से सजी आरती
उठी, बजी घंटी टुन - टुन।
नीराजन लौ हर - गौरी को
लगी मनाने शिर धुन - धुन॥

कर्कश रव से ताल - ताल से
झाँझ और करताल बजे।
मलय - दण्ड से बजे नगारे,
बम - बम सबके गाल बजे॥

घंटों के टन - टन स्वर में था
घंटी का टुनटुन मिलता।
घरी - घंट के मधु लय-स्वर में
मन्त्रों का गुनगुन मिलता॥

सहनाई का मादक स्वर भी
हर - हर उमा अलाप रहा।
लेकिन आज एक विस्मय था,
राग - राग था काँप रहा॥

एक घड़ी के बाद कहीं पर
सती - आरती बन्द हुई।
घरी - घंट - घड़ियाली के भी
टन - टन की ध्वनि मन्द हुई॥

माथ नवा करबद्ध सती से
करने लगी विनय रानी।
नयनों से जल उमड़ रहा था,
सतियों की गद्‌गद्‌ वाणी॥

माँ तू रख ले लाज हमारी,
हम सब कृपा - भिखारी हैं।
हम असहाय, अनाथ, दीन हैं,
हम विपदा की मारी हैं॥

नारी का उर ही नारी को
व्यथा जान सकता है माँ।
नर का उर नारी - उर की क्या
कथा जान सकता है माँ॥

दक्ष - यज्ञ के हवन - कुण्ड में,
प्राण दिये तूने जैसे।
साहस दे, जौहर - ज्वाला में
हम भी जलें मरें वैसे।

आशुतोष के कानों में
कह दे क्षण भर ताण्डव कर दें।
जरा तीसरा नयन खोल दें।
हुँकृति से संसृति भर दें॥

रानियाँ गौरी - चरण छू - छू
मानती जा रही थीं।
कौन जाने मौन क्या
वरदान पाती जा रही थीं॥

पर चिता की आग की लपटें
उन्हें हिल - हिल बुलातीं।
भीम ज्वाला के भयंकर
कम्प से उत्साह पातीं॥

झुलसती छाती गगन की,
जल रही थी आग हा हा।
वीर आहुति दे रहे थे,
आन पर सर्वस्व स्वाहा॥

पथिक, आगे की कहानी
की न पीड़ा सह सकूँगा।
आज रो लूँ खोलकर जी,
फिर किसी दिन कह सकूँगा॥

पर पथिक के हठ पकड़ने
पर चली आगे कहानी।
हृदय में ज्वाला जलाकर
लोचनों में तरल पानी॥

थी कथा जौहर-चिता की,
पर न सुध तन की न मन की।
सामने तसवीर ही थी,
नाचती माँ की बहन की॥

१४

अठारहवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर   माघ सित त्रयोदशी,

सारंग, काशी   १९९९

हवन होता था, चिता की
आग धू-धू जल रही थी।
धूम की गति में मिली
शाकल्य-सुरभि निकल रही थी॥

आँच से जलतीं दिशाएँ,
आँच की माला न कम थी।
पी रही थी आग घी, पर
भूख की ज्वाला न कम थी॥

आज तक किसने अनल की
भूख की ज्वाला बुझाई।
जो चला ज्वाला बुझाने
बुझ गया, पति भी गँवायी॥

लाल-लाल कराल जीभों
को निकाल बढ़ा रही थीं।
अग्नि की हिलती शिखाएँ,
प्रलय-पाठ पढ़ा रही थीं॥

आज चरु के साथ रावल-
वंश का संसार स्वाहा।
वीर होता मन्त्र पढ़ते;
आँसुओं की धार स्वाहा॥

आज इस नरमेध मख में
बाल-केलि दुलार स्वाहा।
धधकती जलती चिता में
माँ-बहन के प्यार स्वाहा॥

साथ आहुति के अनल में
मेदिनी के भोग स्वाहा।
लो, पिता-माता-प्रिया के
योग और वियोग स्वाहा॥

मन्दिरों के दीप स्वाहा,
राजमहल-विभूति स्वाहा।
आज कुल की रीति पर लो,
नीति-भूषित भूति स्वाहा॥

अमर वैभव से भरे इस
ज्वाल में, घर-द्वार स्वाहा।
आन-बान सतीत्व पर लो
आज कुल-परिवार स्वाहा॥

इस हुताशन में कुसुम-से
गात स्वाहा, रूप स्वाहा।
लो प्रजा के साथ ही इस
वीर-भू का भूप स्वाहा॥

पवन से मिल-मिल गले,
हँसती चिता में हास स्वाहा।
सत्य-रक्षा के लिए जीवन
मधुर मधुमास स्वाहा॥

इधर होता हवन करते,
उधर रूपवती खड़ी थी।
चौतरे पर गुनगुनाती,
आँसुओं की फुलझड़ी थी॥

आग, मैं तुझमें समाऊँ,
अङ्क में ही मुक्ति पाऊँ।
आज अपनी लाज तेरी
गोद में छिपकर बचाऊँ॥

पा सकी न शरण कहीं पर,
माँ किसी ने दुख न देखा।
द्रौपदी के कृष्ण ने भी
मलिन मेरा मुख न देखा॥

साथ सतियों के इसी से
शरण में आयी हुई हूँ।
माँ, न तू मुँह फेरना, मैं
दीन ठुकरायी हुई हूँ।

माँ, अगर आदेश दे, तो
रूप की होली जलाऊँ।
आग, मैं तुझमें समाऊँ,
अङ्क में ही मुक्ति पाऊँ॥

आज आँचल में छिपा ले,
द्वार की इतनी हया कर।
पार जीवन के लगा दे,
आज तू इतनी दया कर॥

आज लपटों से लिपटकर,
मैं कहूँ अपनी कहानी।
और इन चिनगारियों में
फूँक दूँ ऐसी जवानी॥

ज्वलित तेरे लोचनों से
भी करुण आँसू बहाऊँ।
आग, मैं तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ॥

मैं जलूँ, तो राख को तू
दे उड़ा क्षिति से गगन पर।
पातकी रज छू न पाये,
नभ हिले मेरे निधन पर।

और विधि से कह, किसी को
रूप दे तो शक्ति भी दे।
पति मिले तो पति-चरण में
भाव भी दे, भक्ति भी दे॥

माँ, अगर कह दे, नहीं तो
देह से ज्वाला जगाऊँ,
आग, मैं तुझमें समाऊँ,
अंक में ही मुक्ति पाऊँ॥

गीत के अन्तिम चरण के
गरम रव ललकार निकले।
जल उठी रानी अचानक
अङ्ग से अङ्गार निकले॥

पातिव्रत के तेज जागे,
जग उठीं चिनगारियाँ भी।
हा, जलीं तन के अनल से
साथ की सब नारियाँ भी।

तब चिता ने भी बुलाया,
क्रूर, लपटों को हिलाया।
और ज्वाला को सभय
कम्पित रतन ने घी पिलाया॥

आग हाहाकार करती
हरहराती चरु चवाती।
रूप ज्वाला में पचाने
को चली भू-नभ कँपाती॥

बार - बार किला हिला,
अम्बर हिला, भूडोल आया।
सिहरकर दुबकीं दिशाएँ,
जय सती का बोल आया।।

देवताओं ने सजल नभ से
सती को झाँक देखा,
भूलती उनको न उस दिन
की सती की रूप-रेखा।।

इधर स्वाहा शब्द निकला,
उधर वह कूदी अनल में।
जल उठीं लपटें लटों में,
वल उठी वह एक पल में।।

गात छन-छन रूप छन-छन,
एक छन तक छन-छनाकर,
उड़ गई मिलकर धुएँ में
ज्योति जग में जगमगाकर

जल गई रानी रुई - सी,
स्मृति सुई - सी गड़ रही है।
पथिक, गंगा आँसुओं को,
विवश आज उमड़ रही है।।

लाज अबला की बचा ली,
आग, क्या तुझको बखानूँ।
छीन ले कोई अगर तुझसे
उसे तो वीर जानूँ।।

हा, सती के बाद ज्वाला
में धधकती नारियाँ थीं।
खेलतीं चिनगारियों से
सुमन - सी सुकुमारियाँ थीं।।

आग में कूदीं अभागिन,
प्रथम विधवाएँ विचारी।
प्राणपति के सामने कूदी
चिता में प्राण-प्यारी॥

देखती अपलक तनय को,
माँ बली बलती चिता में।
हा, पिता के सामने कूदी
सुता जलती चिता में॥

भाइयों को देखतीं कूदीं,
अनल में घोर बहनें।
अग्नि-पथ से स्वर्ग पहुँचीं,
वीर गढ़ की वीर बहनें॥

दुधमुँहीं नव बालिकाएँ,
जो न कूद सकीं अनल में।
आग में फेंकी गईं वे,
मातृ-कर से एक पल में॥

देख भैरव दृश्य जड़-चेतन
सभी लय झाँपते थे।
चीखती थी यामिनी, तारे
गगन पर काँपते थे॥

प्रलय के भय से दिशाएँ
त्राहि-त्राहि पुकारती थीं।
इधर ललनाएँ चिता में
मौत को ललकारती थीं॥

इस कठिन व्रत-साधना में,
लग सकी क्षण की न देरी।
रूप-यौवन की जगह पर
राख की थी एक ढेरी॥

देवियों के भस्म पर नव
सुमन बरसाये सुरों ने।
रख लिया वह दृश्य अपने
में सजग जग के उरों ने॥

राख को शिर से लगाकर
पाप-ताप शमन करो तुम।
देवियाँ इसमें छिपी हैं,
बार-बार नमन करो तुम॥

इतनी कह कथा पुजारी ने
ली साँस, तनीं भौंहें कराल।
आँसू के बदले आँखों में
लोहू भर आया लाल-लाल

वह भीत पथिक से बोल उठा
सुन ली न कहानी रानी की?
अब एक कहानी और सुनो,
अन्तिम रण की कुरबानी की॥

उन्नीसवीं चिनगारी

मातृ-मन्दिर, शिवरात्रि,

सारंग, काशी। १९९९

थी रात पहर भर और शेष,
पौ फटने में थी देर अभी।
शासन करता था भूतल पर
तमराज धरा को घेर अभी॥

नव शिशु-से तारे सटे हुए,
थे अभी गगन की छाती से।
मुखरित न हुए थे वन-उपवन,
विहगों की वीर प्रभाती से॥

जौहर-ज्वाला में कूद-कूद;
उन सतियों के जल जाने पर।
उन भीम-भयंकर-लपटों में,
माँ-बहनों के बल जाने पर॥

प्रज्वलित बुभुक्षित पावक को
उठ माथ नवाया वीरों ने।
उठ-उठ स्वाहा-स्वाहा कर-कर
दी पूर्णाहुति व्रत-धीरों ने॥

मल-मलकर तन में चिता-भस्म
क्षण भर खेले अंगारों से।
शिर लगा चिता-रज गरज उठे
गढ़ हिला-हिला हुङ्कारों से॥

मन्दिर में रखे सिंधोरों को,
फेंका जौहर की ज्वाला में।
नर - मुण्ड बढ़ाने चले वीर
ताण्डव - रत हर की माला में॥

माँ - बहनों के मिट जाने से
प्राणों में मोह न माया थी।
इसलिए आन पर मिटने को
वीरों की व्याकुल काया थी॥

घायल नाहर से गरजे, ताड़ित
विषधर से फुफकार चले।
खूँखार भेड़ियों के समान
वैरी - दल को ललकार चले

फाटक के लौह किवाड़ खोल
बोले जय खप्परवाली की।
जय मुण्ड चबानेवाली की,
जय सिंहवाहिनी काली की॥

जय नाच नचानेवाली की,
जय प्रलय मचानेवाली की।
वैरी के चीर कलेजे को
जय लहू पचानेवाली की॥

बोले अरि शोणित पी जाओ,
बोले मरकर भी जी जाओ।
मेरे गढ़ के घायल शूरो,
अरि-दल से लिपट अभी जाओ॥

जय बोल व्यूह में घुसे वीर,
घनमण्डल में जैसे समीर।
सरपत में जैसे अग्निज्वाल,
दादुर में जैसे वक्र व्याल॥

ले ले वरदान कपाली से,
ले ले बल गढ़ की काली से।
अरि-शीश काटने लगे वीर,
छप-छप तलवार सुजालो से।

पी खून जगी खूनी कटार,
वैरी-उर के थी आर-पार।
अरि कण्ठ-कण्ठ पर कर प्रहार
पी रही रक्त तलवार-धार॥

सौ-सौ वीरों के चक्रव्यूह
में घूम रहा था एक वीर।
सौ-सौ धीरों के आवर्त्तन
में झूम रहा था एक धीर॥

वैरी के ऐसे गल गिरते,
जैसे टप-टप तरु-फल गिरते।
कट-कटकर मस्तक गिरते थे,
शोणित-सागर में तिरते थे॥

रावल तलवार उघारी थी,
जड़ थी तो भी वह नारी थी।
भग-भगकर वह सैनिक उर में
छिपती थी सलज कुमारी थी॥

वह कभी छिपी हय-पाँती में,
वह कभी गजों की छाती में।
वह कभी झमककर उलझ गयी
कम्पित घाती आघाती में।

वह ज्वाला-सी जरती आयी,
वह दावा-सी बरती आयी।
वह घुस-घुस वैरी-सेना में
लो रक्त वमन करती आयी॥

अरि - व्यूह काटती जाती थी,
अरि - रक्त चाटती जाती थी।
अरि - दल के रुण्डों मुण्डों से
रण - भूमि पाटती जाती थी॥

रावल की खर तलवार देख,
रावल - दल को ललकार देख।
वैरी थे थकित - चकित-कम्पित,
कुण्ठित - लुण्ठित संहार देख॥

घन-सदृश गरज खिलजी बोला,
गढ़ गर्जन से डग - डग डोला।
पीछे जो हटा कटारी से,
काटूँगा उसे दुधारी से॥

भय से अरि - वीर कढ़े आगे,
ले - ले शमशेर बढ़े आगे।
मुट्ठी भर गढ़ के वीरों पर,
रावल के उन रणधीरों पर,

तीखे भालों से वार हुए।
बरछे वक्षस्थल पार हुए।
अगणित खूनी तलवारों से,
गढ़ के सैनिक लाचार हुए॥

सौ जन को काट कटा योधा,
सौ जन को मार मरा योधा।
शोणित से लथपथ लोथों पर
सोया अरि - रक्त - भरा योधा॥

उस वीर-यज्ञ में जौहर के
प्रणवीर लगे स्वाहा होने।
माँ के पथरीले अञ्चल पर
सानन्द सपूत लगे सोने॥

दावा-सी अरि की सेना थी,
तरु के समान थे राजपूत।
जल गये खड़े पर कभी एक
डग भी न हटे पीछे सपूत ॥

पतझड़ में तरुदल के समान
गिर - गिर कुर्बान हुए योधा।
जौहर - व्रत की वलिवेदी पर
चढ़-चढ़ वलिदान हुए योधा ॥

जल गये सजाकर अमर चिता
गौरव पर अपने आप वीर।
मरते दम तक करते ही थे
जौहर-व्रत के जप जाप वीर ॥

अब शेष बच गया एक रतन,
वह भी लड़ने से चूर-चूर।
उससे सारी खिलजी-सेना
लड़ती, पर रहती दूर-दूर ॥

तो भी रुख करता जिधर वीर
काई-सी सेना फट जाती।
धर दबा दिया जिस वैरी को
तन से कटि अलग छटक जाती ॥

आँखें निकालकर लाल-लाल,
वह जिसे देखता था कराल।
वह साहस-बल खो जाता था,
निर्जीव वहीं सो जाता था ॥

थक गये अङ्ग पर रावल के,
कुण्ठित भी थी तलवार-धार।
वैरी उस पर धावा बोले,
ले-ले कुन्तल, ले-ले कटार ॥

गढ़ के बुझते से दीपक को
तूफान बुझाने को आया।
आँधी के साथ ववण्डर को
झंझा ने ले बल दिखलाया।

रावल के तन पर एक साथ
छप-छप-छप तलवारें छपकीं।
हा, एक हृदय की ओर शताधिक
बरछों की नोकें लपकीं॥

क्षण भर में रावल के तन की
थी अलग-अलग बोटी-बोटी।
चल एक रक्त-धारा निकली
गढ़ के ढालू पथ से छोटी॥

धारा से अस्फुट ध्वनि निकली,
इस तरह अमर मरना सीखो।
तुम सती-मान पर आन-बान पर
जौहर-व्रत करना सीखो॥

पावन सतीत्व की रक्षा
के हित प्राण गँवा देना वीरो।
तुम सती-चिता के पूत भस्म पर
माथ नवा देना वीरो॥

पथिक, अलाउद्दीन तुरत
आया आकुल अरिझुण्ड लिये।
चला दुर्ग की ओर रतन का
कुन्त-नोक में मुण्ड लिये॥

शोणित-लथपथ पद से गढ़ की
भूमि अपावन करते से।
सिंहद्वार से घुसे दुर्ग में,
वैरी चकित सिहरते से॥

मुरदों से भी डर - डरकर
गढ़ पर डग भरते थे योधा।
इधर - उधर भयभीत देख
कम्पित पग धरते थे योधा ॥

जौहर - व्रत की याद लिये
सतियों के तन का छार लिये।
पथिक, हुआ निर्जीव दुर्ग,
उर पर मुरदों का भार लिये ॥

बीसवीं चिनगारी

वनदेवी धाम,
निकुम्भ, आजमगढ़

महारात्रि, नवरात्र
२०००

सूरज निकला लाल - लाल,
भूतल पर रवि - किरणें उतरीं।
गरम चिता के पूत भस्म पर
मुर्दों के तन पर बिखरीं॥

गढ़ के तरु - तरु की डालों पर
खगावली बोली बोली।
नभ तक धूम मचानेवाली
खूब जली गढ़ की होली॥

खेल रक्त से फाग सो गये
क्यों तुम शोणित से लथपथ।
जगो जगाती तुम्हें प्रभाती,
जग - जग चले सजग जग-पथ॥

सिंहद्वार से घुसे जा रहे,
चोर कुबेरपुरी अन्दर।
खोज रहे व्याकुल आँखों से
किसको लिये छुरी अन्दर॥

जगो, तुम्हारी अलका में
पर - तापी घुसते जाते हैं।
उठो, तुम्हारी स्वर्गपुरी में
पापी घुसते जाते हैं॥

जगो, तुम्हारी काशी में
हत्यारों ने घेरा डाला।
उठो तुम्हारे तीर्थराज पर
निठुरों ने डेरा डाला॥

जगो, तुम्हारी जन्मभूमि को
रौंद लुटेरे लूट रहे।
उठो तुम्हारी मातृ-भूमि के
जीवन के स्वर टूट रहे॥

जगो, तुम्हारे अन्न-वस्त्र पर
राह बनाई जाती है।
उठो, तुम्हारी हरियाली में
आग लगाई जाती है॥

जगो, तुम्हारे नन्दन को
वैरी शोणित से सींच रहे।
उठो, द्रौपदी का अञ्चल
सौ - सौ दुःशासन खींच रहे॥

जगो, सदलबल रावण आया,
कहीं न चोंच डुबो पाये।
उठो, तुम्हारी पञ्चवटी में
सीता - हरण न हो पाये॥

जगो, विरोधी घूम - घूम
घर - घर के दाने बीन रहे।
उठो तुम्हारे आगे की
थाली बरजोरी छीन रहे॥

जगो, तुम्हारी रतन - राशि पर
अरि का कठिन लगा ताला।
उठो, डाकुओं ने जननी की
निधियों पर डाका डाला॥

रावण के हाथों पर जैसे
शंकर का कैलास हिला।
उठो, तुम्हारी हुंकृति पर
वैसे ही हिले अधीर किला॥

जगो, दबाकर अँगड़ाई लो,
हँफर-हँफर गढ़ हाँफ उठे।
शेषनाग-सी करवट लो
सारी भू थर-थर काँप उठे॥

जगा-जगा खग हार गये, पर
जग न सके योधा गढ़ के।
थके बिचारे कौवे भी
जाग्रति के मन्तर पढ़-पढ़ के॥

गीधों ने भी उन्हें हिलाया,
पर न नींद उनकी टूटी।
कैसे अमर शहीद जागते;
गढ़ की थी किस्मत फूटी॥

रावल-शिर ले कुन्त-नोंक पर
ध्यान लगाये थाती पर।
कलरव की परवाह न कर
अरि चढ़ा किले की छाती पर॥

अत्याचारी के दर्शन से
गढ़ का कण-कण काँप उठा।
हा, पापी के पाप-भार से
दुर्ग-धरातल हाँफ उठा॥

उस नृशंस ने दुर्ग-शिखर पर
एक वृद्ध नारी देखी।
उस वृद्धा के जर्जर तन पर
एक फटी सारी देखी॥

फटे पुराने चिथड़ों में माँ
का शरीर था ढँका हुआ।
सतत घूमने से मुरदों में,
अङ्ग-अङ्ग था थका हुआ॥

तो भी तन से तेज निकलता,
रोम-रोम से पावनता।
लकुट लिये थी, जरा-भार से
झुकी हुई थी देह-लता॥

बोल उठा माँ से अभिमानी,
कहाँ पद्मिनी रानी है।
मुझे महल का पता बता दो,
मेरी विकल जवानी है॥

तब कुछ करो, विकल प्रश्नों का
पहले उत्तर दे लो तुम।
एक-एक अक्षर पर मुझसे
एक-एक मणि ले लो तुम॥

जननी ने आँखों से इंगित
चिता-धूम की ओर किया।
जहाँ रानियाँ जलती थीं,
उस ओर तर्जनी-छोर किया॥

और पके नयनों से झर-झर
आँचल पर आँसू बरसे।
सती-विरह से विकल हो गई,
लकुट गिरा कम्पित कर से॥

दृष्टि पड़ी उस अधमाधम की
धूम-राशि पर जैसे ही।
तड़प उठी बिजली, प्रकाश से
चकाचौंध भी वैसे ही॥

धूम-राशि से, ज्योति-ज्योति से
निकली सती कटार लिये।
बढ़ी अधम की ओर मौत-सी,
आँखों में अङ्गार लिये॥

देख कुन्त पर रावल का शिर
उसे रोष पर रोष हुआ।
चली महाकाली-सी उस पर,
रह-रहकर घन-घोष हुआ॥

चकाचौंध के खर प्रकाश से
गिर-गिर आँखें बन्द हुईं।
वार-वार गर्जन-तर्जन से
अधम शक्तियाँ मन्द हुईं॥

त्राहि-त्राहि कर वृद्धा की
गोदी में छिप जाना चाहा।
जीवन हर लेनेवाली से
हा जीवन पाना चाहा॥

पर न वहाँ वृद्धा को देखा,
अष्टभुजी मुँह बाये थी।
लाल जीभ लपलपा रही थी,
मानो काल जगाये थी॥

बिखरे खुले केश हिलते थे,
शोणित-स्नात कटारी थी।
रुधिर-भरा खप्पर हाथों पर,
आँखों में चिनगारी थी॥

गर में नर-मुण्डों की माला,
खून चू रहा था तरतर।
एक-एक हुंकृति में विप्लव,
प्रलय काँपता था थरथर॥

अष्टभुजी काली की काली
मूर्ति देखकर काँप गया।
भगने तक की सुधि न रही,
अन्तिम जीवन अरि सौंप गया॥

सिंहवाहिनी अष्टभुजी तड़पी,
दहाड़कर सिंह चला।
काली का कुन्तल अरि के
उर में घुस जाने को मचला॥

साथ साथियों के अधमाधम
गिरा चेतना-हीन हुआ।
अष्टभुजी के भय से वह
अपने में आप विलीन हुआ॥

जग-जगकर वैरी खिलजी को
उठा झुण्ड के झुण्ड भगे।
मानो गढ़ की स्वर्गपुरी से
सभय नरक के कुण्ड भगे॥

जीवित मुरदा वीर दुर्ग से
उठा महल में आया है।
दिल्ली में था शोर, कर्म का
खिलजी ने फल पाया है॥

हिन्दू-मुसलमान ही क्या, जब
थूक-थूक उस पर बोले।
पर-नारी को गया छेड़ने,
धिक्, पापी सेना को ले॥

मातृ-पितृ-कुल का कलंक
पत्नी के उर का दर्द हुआ।
पत्नी रोती थी मेरा यह
मर्द मुआ नामर्द हुआ॥

भाई उसको नहीं देखता,
बहन समीप न जाती थी।
उसके तन की पीड़ा ही
उठ-उठ उसको समझाती थी।

था परिवार भरा पर दुख
सुनने वाला कोई न रहा।
उसकी तन-पीड़ा पर शिर
धुननेवाला कोई न रहा॥

गढ़ का वही दृश्य पापी के
सदा सामने रहता था।
मुझे बचा लो, मुझे बचा लो।
अमर-अमरकर कहता था॥

इसके आगे क्या पापी का
हाल हुआ मालूम नहीं।
पर हाँ, आगे उस निर्दय की
रही धरा पर धूम नहीं॥

तब से उसने कहीं न अपने
मुख की कालिख दिखलायी।
आये गये मेघ, पर कालिख
धुली न अब तक धुल पायी॥

उसकी पाप-कथा से मन में
कहीं न पाप समा जाये।
बन्द कथा होती उसकी
अघ-छाया कहीं न आ जाये॥

पथिक, एक आश्चर्य सुनो,
अब तक तुमने न सुना होगा।
मुक्त सती अब भी गढ़ पर
आती तुमने न गुना होगा॥

अर्धरात्रि के मौन प्रहर में
सतियों के सँग आती है।
स्वर्गपुरी से गढ़ तक जौहर-
व्रत की महिमा गाती है॥

दुर्ग-शिखर पर देव-लोक की
अब भी ज्योति उतरती है।
भग्न खँड़हरों में बादल-सा
बालक ढूँढ़ा करती है॥

वह सतीत्व पर मिटनेवाले
गोरे को न कहीं पाती।
वह पुरुषों में आन, नारियों
में अभिमान नहीं पाती॥

कहीं नरों में पत्नी-व्रत, पातिव्रत-
बल ललनाओं में।
नहीं देखती, खोज-खोज
थकती नगरों में, गाँवों में॥

प्रथम घृणा करती, पर फिर
चिन्ता से व्याकुल होती है।
अपनी हिजड़ी सन्तानों पर
फूट-फूटकर रोती है॥

तुड़वा सकी न कापुरुषों से
जननी की जंजीरों को।
समाधियां से जगा रही है
जौहर के रणधीरों को॥

सती-वचन पर गत गौरव से
प्रीति जोड़नी ही होगी।
पराधीनता की बेड़ी
ललकार तोड़नी ही होगी॥

पथिक, रहो तैयार सती की
भेरी बजनेवाली है।
जौहर-व्रत-सी नर-नारी की
सेना सजनेवाली है॥

जभी खुले, बन्दी माँ का यह
बन्धन कभी खुलेगा ही।
जभी धुले, माँ का कलंक
हम सबसे कभी धुलेगा ही॥

अब पथिक, कथा रानी की
मैं कह न सकूँगा आगे।
कितने ही सुनते होंगे
कायर नर नीच अभागे॥

रानी की अमर कथा क्या
सुन सकते सोनेवाले।
पर उन्हें सुनानी होगी,
जो हैं सुन रोनेवाले॥

अब चलो, सती के इंगित
संचित धन से रख मन में।
अब चलो, देर होती है
मन को रख सती-चरण में॥

यह कह गोमुखी उठायी,
पहरों तक फेरी माला।
बुद-बुद पावन मन्त्रों से,
अपने उर को भर डाला॥

मृगछाला बगल दबाया,
ले सजल कमण्डलु कर में।
वनदेवी के चरणों को
रख लिया पुलक अन्तर में॥

अनुरक्त पथिक को लेकर
गढ़ - गिरि की ओर पुजारी
तूफान विकल आँधी - सा
चल पड़ा सुमिरिनीधारी ॥

इक्कीसवीं चिनगारी

विष्णु-मन्दिर, द्रुमग्राम (आजमगढ़)

वटसावित्री व्रत, २०००

पावन 'निकुम्भ' के अन्दर
द्रुममय 'दुमग्राम' बसा है।
दक्षिण 'भैंसही' लहरती,
उत्तर बहती 'तमसा' है॥

वह विह्वल वीर पुजारी
यद्यपि 'दुमग्राम' - निवासी।
पर पावन करती रहती
उसको शंकर की 'काशी'॥

सहसा उससे उसको माँ
की पावन गोदी छूटी।
पीड़ा ने अँगड़ाई ली,
यौवन में किस्मत फूटी॥

जननी-पद के जाते ही
उसकी मति थरथर डोली।
उसका घर फूँक किसी ने
सावन में खेली होली॥

वह व्यथा दूर करने को
कविता में बोला करता।
सहचरी सती 'गायत्री' के
सँग-सँग डोला करता॥

'जौहर' समाप्त होते हो
मिल सतियों की माला में,
उसकी वह साधु प्रिया भी
कूदी "जौहर" - ज्वाला में

एकाकी गुरु - मन्दिर में
पहरों तक जप - तप करता।
गायत्री - गुरु - मन्त्रों से
अन्तर के कल्मष हरता॥

फिर भी जब शान्ति न पायी,
तब अटल समाधि लगायी।
देखा समाधि के भीतर,
जननी की छाया आयी॥

बोली—"न दुखी हो बेटा,
मैं तुझसे दूर नहीं हूँ।
अपने हीरे को दुख दूँ,
मैं ऐसी क्रूर नहीं हूँ॥

बेटा, मैं तेरे तन - मन के
सुख - दुख देखा करती।
मुरझाये लाल न मेरा,
क्षण - क्षण मुख देखा करती।

अब एक मान कहना तू,
जा, सती-चरण-अर्चन कर।
बेटा, अति शान्ति मिलेगी,
रज से पावन तन-मन कर"।

यह कह सुत से जननी ने
रानी की कही कहानी।
दोनों के उर में ज्वाला,
चारों आँखों में पानी॥

शत वर्षों का जीवन हो,
यह आशीर्वाद तुझे है।
उठ, पूजा कर, जाती हूँ,
होती अब देर मुझे है॥

यह कहकर छाया सरकी,
उसकी समाधि भी टूटी।
कर पूजा-पाठ पुजारी,
ने जीवन की निधि लूटी॥

की परिक्रमा पुर भर की,
रख द्वार-द्वार पर अक्षत।
पुर-सुर पुर-जन वन्दन कर,
वह चला तीर्थ-पथ पर नत॥

वह उठा 'विष्णु-मन्दिर' से,
गुरुजन को माथ नवाया।
'नारायण-गृह' के सन्निधि
वह 'कूप-जगत' पर आया॥

बाहर पुर की वधुओं ने
उस मातृहीन को देखा।
आँखों में पानी भर-भर
उस चिर नवीन को देखा॥

बोली, जल पोंछ दृगों के,
उसकी सब दूर बला हो।
माँ-बाप-बिना पागल है,
उसका भगवान भला हो॥

गुरुदेव-कुटी पर आकर
गुरु-पद पर शिर रख बोला।
मैं चला तीर्थ-यात्रा को,
गुरु का भी आसन डोला॥

'वनदेवी' के मन्दिर में
कर पाठ, मना देवी को
वह चला तीर-सा पथ पर
उर-भाव जना देवी को॥

बढ़ चला पुजारी ऊबड़-
खाभड़ कण्टक-मय पथ से।
कुश के तीखे डाभों पर
नृप दशरथ के से रथ से॥

ऊसर, बंजर, नद, नाले,
वीरान विपिन पथरीले।
विलमा न सके यात्री को,
क्षण भर भी पथ कँकरीले॥

पथ के कंकड़-पत्थर क्या
हट गुरु गिरि तक जाते थे।
योगी के पथ के काँटे
भी बगल दुबक जाते थे॥

झुर-झुर बयार बहती थी,
घन-माला छाया करती।
माँ सी अनुकूल नियति भी
उसको बहलाया करती॥

तरु अगल-बगल हो जाते,
ऊँची भू सम हो जाती।
जाते जल सूख नदी के,
पथ की बाधा खो जाती॥

वह 'गाधिनगर' से होता
'काशी' आया पूजन कर।
ऊँची अटारियाँ देखीं
पग-पग पर अर्चित शंकर॥

श्रुति - पाठ कण्ठ करने की
बटु - ध्वनि से पावन होता।
रोहित की करुण कहानी
की स्मृति से सावन होता॥

हर महादेव हर गंगे,
हर विश्वनाथ हर काशी।
जन - जन के रव से विह्वल
हो गया नवल संन्यासी॥

मुखरित घाटों के दर्शन
कर, स्नान किया गंगा में।
जल के भीतर सन्ध्या की,
गोदान किया गंगा में॥

पार्थिव - पूजन कर मन्दिर
में शिव को माथ नवाया।
सोने का मन्दिर देखा,
अर्चित हर से वर पाया॥

अभिराम 'मातृ-मन्दिर' में,
'माधव - निकुंज' उपवन में।
निशि भर थम चला पुजारी,
रख 'विन्ध्यवासिनी' मन में॥

कर 'अष्टभुजी' को जोड़ा,
ले 'विन्ध्यवासिनी' से वर।
सेंदुर-चूरी - चुनरी ली,
चल पड़ा अधीर कलेवर॥

रघुवीर - दूत - सा पहुँचा
अभिराम त्रिवेणी - तट पर।
काशी से ध्यान लगा था
युग - पूत 'अक्षयवर वट' पर॥

गंगा - यमुना बहनों को
घुल - घुलकर मिलते देखा
जल - तल की सरस्वती को
खुल - खुलकर खिलते देखा ॥

माणिक - मोती - नीलम के
थीं हार पिरोतीं बहनें।
लर टूट-टूट जाती थी,
पर विमन न होतीं बहनें ॥

पहनेगा कौन इसे रे,
श्रम पड़ता धार-तती को।
बनने पर मिल जाता तो
पहनाता हार सती को ॥

जलपान किया, दर्शन कर
डुबकी जल - बीच लगायी।
सूर्यार्घ्य दिया, सन्ध्या की,
पद - गति में आँधी आयी ॥

यमुना के तीरे - तीरे
उड़ चला राम-गुण गाता।
मीरा के नटनागर को
उर - आसन पर पधराता ॥

वृन्दावन के, गोकुल के
उस चरवाहे घनतन को,
कर उठा किया अभिवादन,
उस राधा - रमा - रमण को ॥

वह चला 'बेतवा'-तट से,
क्षण भर में पहुँचा झाँसी।
लक्ष्मीबाई रानी के
सन्निधि आया सन्यासी ॥

सन सत्तावन में जिसकी
तलवार तड़ित-सी चमकी।
जो स्वतन्त्रता - बलिवेदी
पर मख-ज्वाला सी दमकी॥

मुसकायी वह झाँसी के
कण - कण में लक्ष्मीबाई।
उसने पूजा की, कुछ दिन
झाँसी में धुनी रमाई॥

वह गढ़ की ओर चला था
जैसे ही वीर पुजारी।
वैसे ही मिला पथिक भी,
जो साधु-मिलन अधिकारी॥

वह पथिक पुजारी से मिल,
पद-रज छू-छूकर बोला—
"क्यों कहाँ चला मृगछाला,
मन तीर्थाटन पर डोला?

क्यों किसे पूजने जाते,
वह कौन कहाँ पर बोलो।
मेरा भी मन विह्वल है,
क्षण भर थम गतश्रम हो लो॥

इस कम्बल के आसन को
पद-रज से पावन कर दो।
अन्तर की तीव्र तृषा को
आख्यान-अमृत से भर दो"॥

अधिकारी देख पथिक को
बैठा कम्बल पर ज्ञानी।
अथ से इति तक रो-रोकर
रानी की कही कहानी॥

सुन पूत कथा रानी की
जड़ सदृश पथिक निश्चल था ॥
अन्तर की श्रद्धा उमड़ी,
आँखों में जल ही जल था ॥

उसने भी साथ पुजारी
के गढ़ पर जाना चाहा।
आँसू से सती - पदों को
धो फूल चढ़ाना चाहा ॥

आगे चल पड़ा पुजारी
अनुरक्त पथिक को लेकर।
श्रद्धा से हठ करने पर
पूजा की थाली देकर ॥

वह उड़ा विहग-सा पथ पर
होता 'शिवपुरी' नगर से।
आ गया समीप किले के
अनजाने अगम डगर से ॥

बेसुध हो गया पुजारी
क्षण-क्षण पुलकित हो - होकर।
गढ़ - गिरि को माथ नवाया
भू - रज - लुण्ठित हो - होकर ॥

भू पर पद रखते डरता,
लाचार पुजारी बढ़ता।
यदि शिर में गति होती, तो
गढ़ पर शिर के बल चढ़ता ॥

अविराम मन्त्र-सा पढ़ता,
करता दण्डवत निरन्तर।
वह चढ़ने लगा किले के
दुर्गम पथरीले पथ पर ॥

उर में उत्साह भरा, पर
रह - रहकर सिहरन - कम्पन।
डगमग - डगमग पग भू पर
वह पुलकित तन, पुलकित मन॥

रानी की पाहन - प्रतिमा,
सरवर के एक किनारे।
अपलक क्षण भर तक देखी
डूबे जल में दृग-तारे॥

वह पुलक सोचता आया
था वेसुध पथ पर योगी।
सोने का मन्दिर होगा,
हीरे की प्रतिमा होगी॥

पर वहाँ किसी हिन्दू ने
छतरी भी नहीं बनायी।
धिक् हिन्दु - सूर्य - वैभव पर
तत्काल रुलाई आयी॥

रोते ही उस प्रतिमा को
साष्टाङ्ग किया अभिवादन।
फिर लोट गया रानी के
जड़ चरणों पर व्याकुल-मन॥

पहरों तक पद पर सोये,
पहरों तक पद पर रोये।
आँखों के गङ्गा - जल से
अघ जनम - जनम के धोये॥

उठकर तीर्थों के जल से
रोते ही स्नान कराया।
कम्पित कर से प्रतिमा को
रोते ही हार पिन्हाया॥

चरणों पर फूल चढ़ाकर
घी - दीप जलाया रोते।
अधिकाधिक पद - पूजन को
उर - भाव विकल थे होते॥

नैवेद्य, धूप, मधु, चन्दन,
अक्षत से पद - पूजा की।
मानस की श्रद्धा उमड़ी,
सब ओर सती की झाँकी॥

निर्मल कपूर को, घी की,
जल उठी आरती जगमग।
घण्टों की, घड़ियालों की
धीर - ध्वनि से मुखरित जग॥

वह लिये आरती कर पर
केकी - सा नाच रहा था।
वरदान सती की प्रतिमा
के मुख पर बाँच रहा था॥

घण्टों के बाद कहीं पर
ध्वनि रुकी यजन-घण्टों की।
तत्काल पुजारी ने भी
रुक ज्वलित आरती रोकी॥

पञ्चों के आगे घूमी,
सबने झुक शीश नवाये।
जग के सब प्रान्तों के नर
थे सती पूजने आये॥

अपनी - अपनी भाषा में।
अपनी - अपनी बोली में।
स्तुति की सबने रानी की
अपनी - अपनी टोली में॥

पर पथिक पुजारी दोनों
हिन्दी भाषा में बोले।
जो सबसे अधिक मधुर थी,
जिसको सुन जड़ भी डोले॥

दो चार शब्द कह पाये,
रुँध गये गले दोनों के।
श्रद्धा पर श्रद्धा उमड़ी,
आँसू निकले दोनों के॥

सब चले गये पूजा कर,
रुक रोते पथिक - पुजारी।
उस प्रतिमा की आँखों से
भी जलधारा थी जारी॥

कुछ देर बाद पाहन की
प्रतिमा के पद - कर डोले।
रानी ने वरद विलोचन
पाहन - प्रतिमा में खोले॥

प्रत्यक्ष सती - दर्शन से
जीवन के सब फल पाये।
रानी के मृदुल पदों पर
आँसू के फूल चढ़ाये॥

बोली, वर माँग पुजारी,
उसने वरदान न माँगा।
केवल आँसू के स्वर में
जौहर का गायन माँगा॥

नभ से सुमनावलि बरसी,
अविराम दुन्दुभी बाजी।
उस साधु - पुजारी के गुण,
गा उठी पुलक सुर - राजी॥

प्रभो, पुजारी की पूजा यह,
वीर सती का जौहर-व्रत।
रवि-मयंक सम अजर अमर हो,
मुख - मुख में मुखरित सन्तत ॥

छन्द-छन्द की गति-लय-ध्वनि में
प्रभो, तुम्हारी गीता है।
शब्द - शब्द में, अर्थ - अर्थ में,
महिमा परम पुनीता है ॥

पाञ्चजन्य की ध्वनि स्वर-स्वर में
जगा रही सन्तानों को।
हुं - हुं हुंकृति तुक - तालों में
उठा रही बलिदानों को ॥

ह्रस्व - दीर्घ में लघिमा - गरिमा
मात्राओं में बाँके तुम।
सन्धि-सन्धि में शक्ति-संग तुम,
सबल सहायक माँ के तुम ॥

महाकाव्य की पंक्ति-पंक्ति में,
चरण-चरण में झाँक रहे।
आदि-अन्त के बीच गरुड़ को
वर्ण - वर्ण में हाँक रहे ॥

भारत के पुण्यों का फल, जो
'जौहर' में अवतार हुआ।
नाच उठी कविता विह्वल हो,
जन - जन का उपकार हुआ ॥

इसीलिए है विनय, चाप ले
चरणों में टंकार करो।
'जौहर' के छन्दों में गरजो,
वर्णों में हुंकार करो ॥

गूँज उठे ध्वनि वेद-पाठ की
जड़-चेतन संवाद करें।
द्वार-द्वार के पक्षी भी
सूत्रों पर वाद-विवाद करें॥

ललनाएँ सब रतन-पद्मिनी
के जीवन का मनन करें।
'जौहर' के जौहर को समझें,
पति-पद का अनुगमन करें॥

नर में पत्नीव्रत का बल हो,
पातिव्रत-बल नारी में।
जौहर की सतियों का साहस
वृद्धा-युवति-कुमारी में॥

—* शुभम् *—